मीराबाई विशेषांक

मीरा को गुरु मिलिया रैदास

(संत श्री बरसाना शरण जी)

संरक्षक –

श्री राधा मान बिहारी लाल

प्रकाशक –

राधाकान्त शास्त्री,

मान मंदिर सेवा संस्थान

गह्वर वन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)

Website : www.maanmandir.org

E-mail : ms@maanmandir.org

bk@maanmandir.org

Tel. : 9927338666, 9837679558

मूल्य – १० रुपये

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई ।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ।
तात मात भ्रात बन्धु आपनो न कोई ॥
छांड़ि दई कुल की कानि कहा करिहै कोई ।
संतन ढिग बैठ-बैठ लोक लाज खोई ॥
चूनरी के किये टूक ओढ़ लीनी लोई ।
मोती मूंगे उतार वनमाला पोई ॥
अंसुबन जल सींचि-सींचि प्रेम बेलि बोई ।
अब तो बेलि फैलि गई आनंद फल होई ॥
दूध की मथनियां बड़े प्रेम ते बिलोई ।
माखन जब काढ़ि लियो छाछ पिये कोई ॥
भगत देखि राजी हुई जगत देख रोई ।
दासी 'मीरा' लाल गिरधर तारो अब मोई ॥

ब्रजोपासना में जैसा कि नृत्यगान का महत्त्व सर्वोपरि है । इसी भाव से मीराबाई नाच-नाचकर गिरिधर को रिझाती थीं । 'पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे' – पूज्य बाबा महाराज भी पिछले ६४ वर्षों से इसी उपासना पद्धति से नृत्य-गान करके अपने आराध्य को रिझाते आ रहे हैं । उन (पूज्य बाबा महाराज) को मीरा जी के पद इतने प्रिय हैं कि वे शैशवकाल से ही उनके पदों का गान करते आ रहे हैं और आज भी मीरा के उन प्रेम-गीतों को गाते हैं । पूज्य बाबा श्री द्वारा मीरा जी के पदों का गायन आप इस (website) पर सुन सकते हैं । http://maanmandir.org/night-bhajans-2010-part02/

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप बाबाश्री के प्रातःकालीन सत्संग का ८:३० से ९:३० तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:३० से ७:३० तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं ।

सम्पादकीय

बहुधा नारी चरित्र आलोचनाओं की परिधि से आवृत देखा जाता है परन्तु भारतवर्ष में नारी उत्कर्ष की पराकाष्ठा ने अज अनादि अनन्त जगदानन्द परमपिता परमेश्वर को उनका दास बना दिया । परब्रह्म परमात्मा जिसकी अल्प ज्योति पुंज के प्राप्त्यर्थ दस-दस हजार वर्ष की समाधि लगाने वाले ऋषिगण भी रिक्तहस्त ही उन देवियों के सौभाग्य की सराहना करते हैं, जिनके इशारे पर वही परमात्मा कठपुतली बना नाचा करता है । अनेक देवियों ने अपने इस गौरव से समस्त सृष्टि का मार्ग प्रशस्त किया है । ब्रज देवियाँ बिना किसी सम्मान के पिता का नाम लेकर संबोधित करतीं कि "नन्द के हमारी पन्हैया ले आ" और वह नंदनंदन न केवल अपने कर कमलों द्वारा अपितु अपने मस्तक पर उनकी चरणपादुका रखकर दौड़ा चला आता । ऐसी ही एक गोपी आज राजस्थान के मेड़ता में प्रगट हो अपने गिरधर गोपाल के प्रेमपाश में आबद्ध सारे राष्ट्र को पावन बनाती हुयी सशरीर प्रभु में लीन हो गयी थी परन्तु जगज्जननी सीता माता को भला कलंकित करने में मूढ़ प्राणी नहीं चूका तो वह मीराबाई को कैसे छोड़ता । स्त्री-पुरुष, जाति, समाज, सम्प्रदायों के भेद में उलझ कर प्राणी महापुरुषों, महादेवियों में अभाव कर अपना सर्वनाश कर बैठता है । उस भेद से बचने बचाने के उद्देश्य से पतित पावनी देवी मीरा के पावन चरित्र पर यह विशेषांक पाठकों के आस्वादनार्थ प्रकाशित किया है ताकि भाव जगत में हम सभी भावग्राही जनार्दन के प्रेमभाजन बन सकें।

'भावो हि विद्यते देवः तस्माद्भावो जनार्दनः ।'

- राधाकान्त शास्त्री, मान मंदिर व्यवस्थापक

भारत के गौरव को गौरवान्वित किया देवी मुरलिका जी ने –

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के त्रिमासीय प्रवासोपरान्त वापस पहुँची बाल साध्वी मुरलिकाजी गह्वरवन (बरसाना) में । आपकी जैसी अलौकिक प्रतिभा है तदनुसार उन्होंने विदेशों में भी भारतीय प्रतिष्ठा स्थापित किया । जो भारत कभी ऋषि-मुनियों का भारत था और सारे विश्व को जहाँ से दिव्य प्रकाश मिलता रहा, आज कलिकाल की धूमिल किरणों से वह मंदता को प्राप्त हो रहा था । भारत से कोई जाता है तो छवि बनती है कि आ गये डॉलर माँगने परन्तु ब्रजवासिनी देवी मुरलिका ने सिद्ध कर दिया कि पुरातन ऋषियों का गौरव अब भी भारत में है । तीन मास में मानमंदिर सेवा संस्थान से गई टीम की सदस्य श्रीरामजी लाल शास्त्री, श्री राधिकेश जी शास्त्री एवं साध्वी जी ने अनेक कार्यक्रम अमेरिका और कनाडा में किए जहाँ उन्होंने कभी भूल से भी यह आभास तक नहीं होने दिया कि मानमंदिर सेवा संस्थान भारत वर्ष की सबसे बड़ी गौशाला जिसमें ४५००० हजार से अधिक गौवंश मातृवत् पालित है । ब्रज के वन, सरोवर, यमुना महारानी, दिव्य पर्वतों के संरक्षण, संवर्धन का कार्यक्रम चल रहा है तथा बच्चों में दिव्य संस्कारों का आधान व सर्वत्र भगवन्नाम प्रचार-प्रसार किया जा रहा है । निःशुल्क रूप से हजारों भक्त-वैष्णवों को भोजन-प्रसाद व्यवस्था इस संस्था के द्वारा की जा रही है लेकिन रीति सदा अयाचिकी ही बनी रही, क्यों ? क्योंकि देवी मुरलिकाजी भगवद्भाव में ऐसी तदाकारिता को प्राप्त हैं कि वे क्या, हमारी संस्था के सभी भक्त इस बात से आश्वस्त हैं कि भगवान् स्वतः सारे कार्य संप्रेरित करते हैं । जीवाश्रय की कल्पना ही यहाँ नहीं है । जीवाश्रय है तो भगवदाश्रय नहीं । इसी सिद्धांत का प्रतिपादन उन्होंने सर्वत्र किया । कदाचित् कुछ आया भी तो सब गौ-सेवा आदि के लिए ही समर्पित रहा । एक पैसे का भी कभी वैयक्तिलभार्थ उपयोग नहीं किया । समिति के चेयरमैन ने इनके व्यक्तित्व से प्रभावित हो यहाँ तक कह दिया कि हमने सात दिवस पर्यन्त कथा श्रवण किया परन्तु वक्त्री या वक्ता हमने अपने जीवन में कभी नहीं देखा जिसने सात दिन एक बार भी अपने यहाँ चल रही सेवाओं की भी चर्चा तक नहीं किया । अर्थालिप्सा तो बहुत दूर की बात है । ब्रज दर्शन एवं भक्तिसम्पन्नता ही इनका परम लक्ष्य रहा, उन्होंने यहाँ तक कह डाला की आज के बाद इनकी या इन जैसे निर्लोभी निष्काम वक्ता की ही कथा का आयोजन किया जाएगा, यद्यपि ब्रजवासी सभी पूज्य हैं फिर भी देवीजी का अपना उत्कृष्ट व्यक्तित्व है, वे हर बार यहाँ अवश्य पधारें ।

मीरा को गुरु मिलिया रैदास

किबा विप्र किबा न्यासी सूद्र केने नय । येई कृष्णतत्व वेत्ता सेई गुरु हय । (चैतन्यचरितामृतम्)

षड् कर्मनिपुणो विप्रो मन्त्र तन्त्र विशारदः । अवैष्णवो गुरुर्न स्याद् वैष्णवः श्वपचो गुरुः । (पद्मपुराण)

(संत श्रीबरसाना शरण, मान मंदिर)

"श्रीनाभादास जी कृत भक्तमाल सर्वमान्य एवं प्रामाणिक ग्रन्थ है क्योंकि श्रीनाभा जी साक्षात् ब्रह्मा जी के अवतार थे और उन्होंने ही श्रीप्रियादास जी को भक्तमाल की रसमयी टीका लिखने की आज्ञा दी थी । श्रीनाभा जी रामानन्दी और श्रीप्रियादास जी गौड़ेश्वर सम्प्रदाय के थे । इसलिए यह संकीर्णताओं से मुक्त ग्रन्थ है । इसके पश्चात् श्रीरघुराजसिंह जी कृत रामरसिकावली ग्रन्थ प्रामाणिक माना जाता है क्योंकि इसमें अनुदघाटित घटनाओं का विवरण है; यथा – 'यह मीरा के दरश को, जानहु सकल प्रभाव । मरत भयो अकबर अमर, राखि लियो रघुराव ॥', इसका आप प्रस्तुत लेख में अनुभव करेंगे; अतः इन सब दुर्लभ ग्रन्थों व सिद्धान्तों का उल्लेख करने के कारण लेखक व लेख को **मान मंदिर सेवा संस्थान** की ओर से **पुरस्कृत** किया गया है ।"

– **राधाकान्त शास्त्री, सम्पादक-मान मंदिर बरसाना पत्रिका**

चाहे प्रागैतिहासिक स्वरूप हो अथवा पौराणिक स्वरूप, भारत का इतिहास प्रारम्भ से ही बहुत गौरवपूर्ण रहा है किन्तु संकीर्ण विचारधाराओं ने इसे धूमिल करने में कोई कसर नहीं छोड़ी ।

राष्ट्र से, धर्म से प्रेम करने की दुहाई देने वालो ! हमने अपनी नासमझी में बहुत कुछ गँवा दिया किन्तु अब यह धारण कर लें कि भारत केवल एक भूमि ही नहीं है प्रत्युत इस भूमि पर जिस महान संस्कृति का उद्भव व पल्लवन हुआ है, वही अधिक महत्त्वपूर्ण है, जिसकी रक्षा प्रत्येक भारतवासी का परम कर्तव्य है ।

हम उन परिस्थितियों को जन्म न दें जो देश का, समाज का एवं स्वयं का विभाजन कराती हों । कटु होते हुए भी सत्य तो यह है कि विधर्मियों के द्वारा हमारा उतना विनाश नहीं हुआ, जितना कि स्वधर्मियों के द्वारा हुआ। आज तक इस देश के संकीर्ण विचारकों के द्वारा जो देश व संस्कृति का संकुचन हुआ और अनवरत् हो रहा है, वह तो विधर्मी आक्रान्ताओं के द्वारा लाखों वर्षों तक यहाँ लूटपाट, तोड़-फोड़, कत्लेआम किये जाने पर भी नहीं हो सका था ।

खेद है कि आज अपने ही धर्मग्रन्थों की भावना को व महापुरुषों की महिमा को यथार्थ रूप से न समझने वाले मनमुखी ज्ञानाभिमानी अज्ञानी लोग संकीर्णता का ध्वज हाथ में लिये अपने ही धर्म को खण्ड-खण्ड करने को तैयार खड़े हैं ।

कुछ संकीर्ण विचारधारा के लोगों के मन में यह सन्देह उत्पन्न होता है कि संत श्रीरैदास जी चित्तौड़ की महारानी परम कृष्ण-भक्ता श्रीमीराबाई जी के गुरु नहीं थे, सन्देहोत्पत्ति के कई कारण हैं । यथा –

१. श्रीरैदास जी हीन (चमार) जाति के थे और श्रीमीराजी क्षत्राणी होने के साथ चित्तौड़ की महारानी भी थीं तो एक महारानी उनकी शिष्या कैसे हो सकती है?

२. श्रीमीरा जी ने जिन पदों में श्रीरैदास जी को अपना गुरु बताया है, उनको कुछ विद्वानों द्वारा प्रक्षिप्त मानना।

३. ऐतिहासिक दृष्टि से श्रीरैदास जी और श्रीमीराबाई के समकालीन होने का ठीक-ठीक काल निर्णय न हो पाना ।

४. कुछ विद्वानों के मत में श्रीरैदास जी और श्रीमीराबाई जी की उपासना पद्धति में भिन्नता होना ।

प्रथम शंका-समाधान

संत श्रीरैदास जी की हीन जाति को लेकर जिनके मन में शंका होती है इसका मतलब वे एकदम भक्तिशून्य हैं, भक्ति की गन्ध भी नहीं मिली उन्हें। अरे, ये भक्तिमार्ग वह मार्ग है जिसका अवलम्बन लेने से एक चाण्डाल भी सृष्टि कर्ता ब्रह्मा से भी ऊपर पहुँच जाता है । भगवान् श्रीराम ने कहा है –

भगतिवंत अति नीचउ प्रानी ।
मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी ॥

जातिवाद के आधार पर भक्त में अभाव करना जघन्य अपराध है । पद्मपुराण में कहा गया है –

अर्चावतारोपादानम् वैष्णवोत्पत्तिचिन्तनम् ।
मातृयोनिपरीक्षां च तुल्यमाहुर्मनीषिणः ॥

'अर्चाविग्रह की उत्पत्ति के उपादान कारण के सम्बन्ध में सोचना कि यह किस धातु से निर्मित है, वैष्णवों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विचार करना और मातृयोनि की परीक्षा करना – ये तीनों एक समान महापाप हैं ।' अगर भक्ति में जातिवाद को लेकर चलोगे तो भक्ति-पंथ ही नष्ट हो जायेगा, यदि ऐसा होता तो श्रीश्वपच वाल्मीकि जी, शबरी जी, विदुर जी, गुह निषाद जी, नामदेव जी, रैदास जी, कबीरदास जी, धन्ना जाट जी, सेन नाई जी, सदन कसाई जी, त्रिलोकी सुनार जी आदि भक्तों की कथायें शास्त्रों में सादर नहीं गाई जातीं । जातिवाद भक्तिपथ में नहीं चलता है, यह भक्तिमार्ग है यहाँ भक्ति के बिना सब जाति-पाँति महत्वहीन है । श्रीसूरदास जी ने कहा कि इस मार्ग में तो –

स्वपचहु स्रेष्ठ होत पद सेवत, बिनु गोपाल द्विज जनम न भावै ॥

तुलसी भगत सुपच भलो, जपै रैन दिन राम ।
ऊँचो कुल केहि काम को, जहाँ न हरि को नाम ॥

ब्रज के महान रसिक संत श्रीहरिराम व्यास जी के वचन –

व्यास कुलीननि कोटि मिलि, पण्डित लाख पचीस ।
श्वपच भक्त रैदास पर, तुलै न तिन को शीश ॥
व्यास बड़ाई छोड़ि कै, हरि चरणनि चित जोरि ।
एक भक्त रैदास पर, बारौं बांभन कोरि ॥

अथवा

"भक्ति में कहा जनेऊ जाति ।"
इतनौ है सब कुटुंब हमारौ ।
सैन धना अरु नामा पीपा और कबीर रैदास चमारौ ॥

श्रीहरिराम व्यास जी ने स्वयं श्रीरैदास जी की प्रशंसा की । यह इसलिए बताया जा रहा है कि व्यास जी जैसा महान ज्ञानी पण्डित कौन हो सकता है, जिन्होंने शास्त्रार्थ में सम्पूर्ण भारत पर विजय प्राप्त की थी । अनन्तर भगवान् शंकर के द्वारा बोध कराने पर व्यास जी ने ब्रज में आकर श्रीयुगल सरकार की उपासना की, जिन्हें विशाखा सखी का अवतार भी माना जाता है । वृन्दावन के रसिकत्रयी में जिनका नाम आता है । वे स्वयं कह रहे हैं कि भक्त रैदास जी के ऊपर करोड़ों ब्राह्मण न्यौछावर हैं, ऐसा उन्होंने इसलिए कहा क्योंकि वे भक्तितत्त्व के सच्चे ज्ञाता थे । श्रीमद्भागवत में भी श्रीनृसिंह भगवान् की स्तुति करते हुए श्री प्रह्लाद जी कहते हैं –

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखाच्श्वपचं वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ-
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥

(श्रीमद्भागवत ७/९/१०)

हे प्रभो ! द्वादश गुणसम्पन्न चाहे ब्राह्मण ही क्यों न हो किन्तु यदि वह भगवत्पादपद्मों से विमुख है तो उससे भक्तियुक्त चाण्डाल श्रेष्ठ है, जिसने अपना मन, वचन (वाणी), कर्म (शरीर की चेष्टाएँ), अर्थ (धन), प्राण और शरीर भगवान् को समर्पित कर दिया है । सर्व समर्पण से वह चाण्डाल सकुल पवित्र हो जाता है किन्तु वह जात्याभिमानी ब्राह्मण स्वयं को भी पवित्र नहीं कर पाता है ।

श्रीमतंगमुनि ने भी शबरी के समक्ष यही कहा था –

'कैऊ कोटि विप्रताई यापै वारि डारिये ।'

(श्रीप्रियादास जी कृत 'भक्तिरसबोधिनी', कवित्त ३३)

वृहन्नारदीय पुराण में यही कहा गया –

चाण्डालोऽपि मुनिश्रेष्ठ विष्णुभक्तो द्विजाधिकः ।
विष्णुभक्ति विहीनश्च द्विजोऽपि श्वपचाधिकः ॥

'भक्त चाण्डाल भक्तिहीन ब्राह्मण से अधिक श्रेष्ठ है और वह भक्तिहीन ब्राह्मण चाण्डाल से भी अधम है ।'

स्वयं मीरा जी भी भक्ति के आगे जाति-पाँति, कुल मर्यादाओं को कुछ नहीं समझती थीं । स्वयं उनके पदों से यह प्रमाणित होता है, वह नित्य सत्संग-कीर्तन करने नीच (हीन) जाति के लोगों के घरों में भी चली जाती थीं । एक पद में मीराजी की ननद ऊदा उनसे कहती है –

अब मीरा मान लीज्यो म्हारी, हो जी थाने सखियाँ बरजे सारी ।
राणा बरजै राणी बरजै, बरजै सब परिवारी ॥
साधन के ढिग बैठ बैठ के, लाज गमाई सारी ।
नित प्रति उठि नीच घर जावो, कुल कूँ लगाबो गारी ॥

मीराबाई ने स्वयं राणा जी से कहा –

राणाजी हो जाति रो कारण म्हारे को नहीं,
लागो म्हारो हरि भगताँ सूँ हेत ॥
बन में हुती स्योरी भीलणी, ज्याँ का आरोग्या ठाकुर बेर ।
ऊँच नींच हरि नां गिणैं, ऐसी म्हारा हरिभगतां री कोर ॥

अथवा

श्वपच भक्त वारौं तन मन जे, हौं हरि हाथ बिकानी ।
मीरा प्रभु गिरिधर भजिवे को, संतचरण लपटाणी ॥

इसी प्रकार उन्होंने अनेकों पदों में कहा है कि मैंने लोकमर्यादा, जातिमर्यादा सब छोड़ दिया, ये सब भक्ति के अन्तराय (विघ्न) हैं –

श्री गिरिधर आगे नाचूँगी ।
लोक लाज कुल की मरजादा, या में एक न राखूँगी ॥

अथवा

तेरो कोई नहीं रोकनहार मगन होइ मीरा चली ।
लाज सरम कुल की मरजादा, सिरसैं द्वार करी ॥

अथवा

राणा जी मोहि यह बदनामी लागै मीठी ।
कोई निन्दो कोई बिन्दो, मैं तो चलूंगी चाल अनूठी ॥

अथवा

छांड़ि दई कुल की कानि कहा करिहै कोई ।
संतन ढिग बैठ-बैठ लोक लाज खोई ॥

अथवा

राणा जी जहर दीयौ हम जाणी ।
लोक लाज कुल काण जगत की, दइ बहाय जस पाणी ॥

अथवा

कोई निन्दो कोई बिन्दो म्हें तो गुण गोविन्द का गास्यां ।
जिण मारग म्हांरा साध पधारे, उण मारग म्हे जास्यां ॥

अथवा

मैं तो सांवरे के रंग राँची ।

साज सिगार बाँधि पग घुँघरू लोक लाज तजि नाची ॥

अथवा

मैं अपनो मन हरि सूं जोरयो हरी सूं जोर सकल सूं तोर्‌यो ।

नाचन लगी तब घूंघट कैसो लोक लाज तिणका ज्यूं तोर्‌यो ॥

अथवा

मेरो मन लागो हरि जू सूँ मैं अब न रहूँगी अटकी ।

राज कुल की लाज गँवाई, साधां के संग भटकी ॥

अथवा

मैं तो छोड़ी छोड़ी कुल की लाज,

रंगीलो राणो काँई करशे माणा राज ।

इस तरह सैकड़ों पदों में उन्होंने लोक-लाज, जाति-पाँति परित्याग करने की बात कही है ।

कोई यदि शंका करे कि लोक-लज्जा को तिलांजलि देकर ये तो उन्होंने अमर्यादित कार्य किया, लज्जा तो स्त्रियों का भूषण है किन्तु वस्तुतः उनका यह कार्य शास्त्र विरुद्ध नहीं, अपितु शास्त्र समर्थित ही था । कृष्ण-प्रेम में लोक-लज्जा भी एक बंधन है, उसको बिना तोड़े कोई सच्चा श्रीकृष्ण-प्रेमी नहीं बन सकता । लोक-लज्जा का अतिक्रमण यदि भक्ति, भगवत्प्रेम को छोड़कर अन्य हेतु से किया जाय तो वह अवश्य ही अमर्यादित कार्य है किन्तु शुद्ध भक्ति में तो महापुरुषों ने कहा है –

चाखा चाहे प्रेम रस राखा चाहे लाज ।

नारायण प्रेमी नहीं बातन को महाराज ॥

इन लोक-लज्जा की जंजीरों को तोड़ने के बाद ही प्रेम-रस की प्राप्ति हो पाती है ।

ब्रजगोपियाँ भी कहती थीं –

लाज के ऊपर गाज परै ब्रजराज मिलैं सोई काज करो री ।

श्रीतुलसीदास जी के वचन –

प्रीति तहाँ परदा नहीं, परदा तहाँ न प्रीति ।

प्रीति करै परदा करै, तुलसी यह अनरीति ॥

श्री नाभादास जी कृत भक्तमाल जी की श्री प्रियादास जी कृत 'भक्तिरसबोधिनी' टीका में श्रीपीपा जी के चरित्र में भी इसका एक प्रबल प्रमाण प्राप्त होता है । गागरौनगढ़ के नरेश श्रीपीपा जी जब स्वामी श्रीरामानन्दाचार्य जी के साथ गृहत्याग करके जाने लगे तो उनकी सभी रानियाँ उनके साथ चलने को तैयार हो गयीं –

लागी संग रानी दस दोय कही मानी-

नहीं कष्ट को बतावैं डरपावैं मन लावहीं ।

पीपा जी ने रानियों को बहुत समझाया कि भजन करना कोई खेल नहीं है, तरह-तरह के कष्ट उठाने पड़ते हैं । महात्माओं ने कहा है –

बड़ोई कठिन है भजन ढिग ढरिबौ ।

तमक सिन्दूर मेलि माथे पर साहस सिद्ध सती कौ सौ जरिवौ ॥

रण के चाप घायल ज्यौं घूमैं मुरै न गरूर सूर कौ सौ लरिबौ ।

नागरीदास सुगम जिन जानों श्रीहरिवंश पंथ पग धरिवौ ॥

इस प्रकार अनेक तरह से डराने-धमकाने के बाद भी जब वे नहीं मानीं तो उन्होंने उनके समक्ष एक शर्त रख दी कि जो हमारे साथ चलना चाहती है तो वह पहले इन कीमती राजसी वस्त्राभूषणों को उतार के फेंक दे और साधु वेश बनाकर अलफी धारण कर ले ।

कामरीन फारि मधि मेखला पहिरि लेवो-

देवो डारि आभरन जो पै नहीं भावहीं ।

वे सभी रानियाँ इतनी हिम्मत नहीं कर सकीं किन्तु उनमें एक सीता सहचरी नाम की छोटी रानी थी, वह इसके लिए तैयार हो गयी ।

काहू पै न होय दियो रोय भोय भक्ति आई-

छोटी नाम सीता गरें डारी न लजावाहीं ।

उसने अलफी धारण कर ली, सभी राजसी वस्त्राभूषण उतार दिए, इसमें उसने किचिन्मात्र भी लज्जा महसूस नहीं की, तब पीपा जी ने उसके समक्ष और कठिन शर्त रख दी कि तू यदि मेरे साथ चलना चाहती है तो इस अलफी को भी उतार दे और मात्र अधोवस्त्र (कौपीन) धारण कर ले।

यहू द्वर डारौ करौ तनकौ उघारो कियौ-

दया रामानन्द हियौ पीपा न सुहावहीं ।

वह इसके लिए भी तैयार हो गयी, अलफी को उतारने लगी तब श्रीस्वामी रामानन्दाचार्य जी का हृदय दयाद्रवित हो गया और उन्होंने उसे ऐसा करने से रोक दिया और पीपा जी को आज्ञा दी कि अब तुम इसको साथ में लेकर चलो, इससे तुम्हारे भजन में कोई विघ्न नहीं होगा क्योंकि यह शुद्ध भक्ता है, जिसने लोक-लज्जा की जरा भी परवाह नहीं की । तब गुरु आज्ञा से पीपा जी सीता सहचरी जी को अपने साथ ले गए । अतः भक्ति में तो लोक-लज्जा छोड़ना परमावश्यक है ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने लज्जा रूपी आवरण को हटाने के लिए ही गोपियों के चीर चुराए थे ।

अस्तु मीराबाई जी ने जो लोकलज्जा का परित्याग किया, यह उनका कृत्य भक्तियुक्त था, इसीलिए तो बड़े-बड़े महापुरुषों ने उनके इस कार्य की सराहना की है, जैसे श्रीनाभाजी ने भक्तमाल में उनके लिये ऐसे सम्मानजनक शब्द लिखे कि उन्हें कलियुग में प्रकट साक्षात् गोपिकावतार बताया है।

लोकलाज कुल श्रृंखला तजि मीरा गिरिधर भजी ॥
सदृश गोपिका प्रेम प्रकट कलिजुगहि दिखायो ॥

(श्रीनाभा जी कृत भक्तमाल, छप्पय ११५)

इसी तरह राधावल्लभ सम्प्रदाय के संत श्री ध्रुवदास जी महाराज ने भक्तनामावली ग्रन्थ में मीरा जी की बड़ी प्रशंसा की –

लाज छाँड़ि गिरिधर भजी, करी न कछु कुल कान ।
सोई मीरा जग विदित, प्रगट भक्ति की खान ॥
निर्तति नूपुर बाँधि कै, गावति लै करतार ।
बिमल हियौ भक्तनि मिली, त्रिन सम गनि संसार ॥

अतएव मीराबाई जी भी ऊँच-नीच, जाति-पाँति, लोक मर्यादा आदि को कुछ नहीं समझती थीं ।

भगवान् श्रीराम ने भी शबरी से यही कहा था –

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई । धन बल परिजन गुन चतुराई ॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा । बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ॥

(श्रीरामचरितमानस, अरण्यकाण्ड - ३५)

प्रह्लाद जी ने कहा –

नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वासुरात्मजाः ।
प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता ॥
न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च ।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडम्बनम् ॥

(श्रीमद्भागवत ७/७/५१-५२)

'हे असुर बालको ! भगवान् को प्रसन्न करने के लिए न ब्राह्मण होना आवश्यक है, न देवता और न ऋषि होना ही; सदाचार, बहुज्ञता, दान, तप, यज्ञ, शारीरिक-मानसिक पवित्रता एवं बड़े-बड़े व्रतानुष्ठानों की भी कोई आवश्यकता नहीं है । भगवान् केवल निष्काम प्रेमाभक्ति से प्रसन्न होते हैं और तो सब विडम्बनामात्र है ।'

अतः वेदमर्यादा सीमित है किन्तु वैष्णव-मर्यादा बहुत उदार है ।

श्रीव्यासवाणी में हरिराम व्यास जी लिखते हैं –

नाचत गावत हरि सुख पावत ।
नांचत, नाऊ, भाट, जुलाहौ, छीपा नीकै गावत ।
पीपा अरु रैदास विप्र जयदेव सुभलैं रिझावत ॥

भगवान् राम ने कहा –

भगति हीन बिरंचि किन होई । सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई ॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - ८६)

'ब्रह्मा, जिनके मुख से वेद निकले हैं वे भी यदि भक्तिहीन हैं तो त्याज्य हैं ।' ब्रह्ममोह लीला में इसका प्रमाण मिलता है, ब्रह्मा जी को मोह हुआ और उन्होंने ग्वाल-बालों का हरण कर लिया, अनन्तर जब उन्हें बोध हुआ तो आकर के भगवान् के चरणों में गिरे और प्रभु से प्रार्थना की कि हे नाथ! धन्य हैं ये ब्रजवासी जिनके सबकुछ आप हैं । इन ब्रजवासियों अथवा यहाँ के चाण्डाल की भी यदि मुझे चरणरज मिल जाये तो मैं धन्य हो जाऊँगा ।

तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद् गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम् ।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्द-
स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥

(श्रीमद्भागवत १०/१४/३४)

अतः जगत्पिता ब्रह्मा भी भक्तों की चरणरज की कामना करते हैं। श्रीयामुनाचार्य जी ने भी यही कहा –

तव दास्यसुखैकसङ्गिनां भवनेष्वस्त्वपि कीटजन्म मे ।
इतरावसथेषु मा स्म भूदपि जन्म चतुर्म्मुखात्मना ॥

(आलवन्दार स्तोत्र)

'हे प्रभो ! ब्रह्मपद प्राप्ति की अपेक्षा आपके दास्य-सुख में निमग्न भक्तजनों के घर में कीट बनना ज्यादा श्रेष्ठ है ।'

इसलिए भगवान् ने कहा कि –

भगतिवंत अति नीचउ प्रानी । मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी ॥

श्री उद्धव जी के वचन –

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः
कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः ।
नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षा-
च्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥

(श्रीमद्भागवत १०/४७/५९)

ये वनचरी ब्रजगोपीजन जो व्यभिचार से दूषित तथा ज्ञान एवं जाति से भी हीन हैं; किन्तु धन्य है श्रीकृष्णमें इनके अनन्य प्रेम को ।

इससे सिद्ध होता है कि भगवान् से प्रेम करने के लिए आचार, जाति और ज्ञान की अपेक्षा नहीं होती है । ***भला अमृत पीने में आचार, जाति और ज्ञान की क्या अपेक्षा ?***

धिग् जन्म नस्त्रिवृद् विद्यां धिग् व्रतं धिग् बहुज्ञता म् ।
धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥

(श्रीमद्भागवत १०/२३/३९)

इसके विपरीत श्रीकृष्णविमुखता में उच्च कुल, ज्ञान, यज्ञ, व्रतादि की भी सार्थकता नहीं है ।

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः ।
वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥

(श्रीमद्भागवत १०/४७/५८)

श्री उद्धवजी ने श्रीकृष्ण में अनन्य प्रेम होने से वनचरियों का जीवन ही सफल व श्रेष्ठ माना । इससे रहित होने पर तो ब्रह्मा का जन्म भी व्यर्थ है । श्रौत एवं स्मार्त धर्मों में अवश्य शूद्रादि का बहिष्कार है किन्तु वैष्णवधर्म में इस जातीय संकीर्णता का कोई स्थान नहीं है ।

भागवत में स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है –

भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम् ।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ॥

(श्रीमद्भागवत ११/१४/२१)

मैं सन्तों का प्रिय और आत्मा हूँ, मेरी प्राप्ति श्रद्धा व अनन्य भक्ति से ही होती है । मेरी अनन्य भक्ति में यह सामर्थ्य है कि वह जन्मजात चाण्डाल को भी अत्यन्त पवित्र बना देती है ।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान् ने कहा –

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्यु पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ९/३२)

मेरी उपासना से संसार में जितनी भी पाप योनियाँ हैं, ये सभी परागति प्राप्त कर लेती हैं ।

इसलिए संकीर्ण लोगों को चाहिए कि वे ठीक से भागवत-धर्म समझें, विषैली आलोचनाओं के द्वारा समाज को विषमता का विष न पिलाएं । श्री सूरदास जी ने कहा है –

रामभगत वल्लभ निज बानौ ।
जाति गोत कुल नाम गनत नहि रंक होय कैं रानौ ॥
बरनि न जाय भक्त की महिमा बारम्बार बखानौ ।
ध्रुव राजपूत विदुर दासी सुत कौन कौन अरगानौ ॥
युग युग विरद यहै चलि आयौ भक्तनि हाथ बिकानौ ।
सूरदास भक्तन की महिमा साखी देव पुरानौ ॥

भक्त में उसके कुल, रूप, आयु, विद्या और उसके जन्मस्थान आदि को दृष्टि में रखकर अभाव करना भक्तापराध है क्योंकि भक्त चाहे किसी भी कुल में उत्पन्न हुआ हो, चाहे वह रूपवान अथवा कुरूप हो, वह आयु में छोटा या बड़ा हो और वह चाहे विद्वान् या अनपढ़ हो, इन सब कारणों को लेकर उसमें न्यूनाधिक भाव करना अनुचित है, श्रीरूपगोस्वामी जी ने उपदेशामृतम् में यह बात कही है –

दृष्टैः स्वभावजनितैर्वपुषश्च दोषैर्न प्राकृतत्वमिह भक्तजनस्य पश्येत् ।
गङ्गाम्भसां न खलु बुद्बुदफेनपङ्कैर्ब्रह्मद्रवत्वमपगच्छति नीरधर्म्मैः ॥

'जिस प्रकार गंगा जी में फेन प्रवाहित होता है, यद्यपि वह ब्रह्महत्या का अंश है किन्तु फिर भी उससे गंगा जी का ब्रह्मद्रवत्व विनष्ट नहीं होता है, उसी प्रकार हीन जाति, कुरूपता आदि से भक्त का भक्तत्त्व नष्ट नहीं होता है ।' अतः भक्त तो भगवान् के शरीर होते हैं, भगवान् में व उनके भक्तों में अणुमात्र भी भेद नहीं है, इसको सभी शास्त्रों ने, संत-महापुरुषों ने एकमत से स्वीकार किया है । यथा –

नल-कूबर मणिग्रीव ने श्रीमद्भागवत में भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहा –

दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ।

(श्रीमद्भागवत १०/१०/३८)

'हे प्रभो ! मेरी दृष्टि हमेशा संतों के दर्शन करने में लगी रहे, क्योंकि संतजन 'भवत्तनू' आपके ही शरीर हैं ।'

इसी प्रकार श्रीअम्बरीष जी के प्रसंग में भगवान् ने दुर्वासा जी से कहा –

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ।

(श्रीमद्भागवत ९/४/६८)

'संत-भक्तजन मेरे हृदय हैं और मैं उनका हृदय हूँ ।' इसी तरह कबीरदास जी ने एक पद में लिखा है, उसमें भी भगवान् ने नारद जी से यही कहा है –

नारद मेरो साधुन सों अन्तर नाहीं ।
साधुन से अन्तर जो राखैं तेउ नरक में जाहीं ॥
लक्ष्मी मेरी अर्ध शरीरी सोउ भक्त की दासी ।
सब तीरथ साधुन के चरणन कोटि गंग अरु कासी ॥
जहँ ये जेवैं तहँ मैं जेऊँ जहँ सोवैं तहँ सोऊँ ।
जो मेरे भक्तन दुःख देवे कुल समेत तेहि खोऊँ ॥
जहँ ये मेरो करैं कीरतन तहाँ करूँ मैं वासा ।
इन्हीं के पीछे उठि धाऊँ मोहि इनहि की आसा ॥
तजि अभिमान प्रेम सों सेवैं सोई मोकूँ पावैं ।
कहत कबीर भक्त की महिमा हरि अपने मुख गावैं ॥

नारद भक्तिदर्शन में श्रीनारद जी ने भी कहा कि भक्तों व भगवान् में कोई भेद नहीं है । भक्त भगवान् के ही स्वरूप हैं ।

तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात् ।

(नारद भक्ति सूत्र – ४१)

श्रीनाभा जी ने भी भक्तमाल के मंगलाचरण में भगवान् व भक्तों का ऐक्य दर्शाया है –

भक्त भक्ति भगवंत गुरु चतुर नाम वपु एक ।

अरे, अन्यत्र तो भक्तों को भगवान् से भी बड़ा बताया गया है । श्रीमद्भागवत में भगवान् श्रीकृष्ण के उद्धव जी के प्रति वचन –

'मद्भक्तपूजाभ्याधिका' (श्रीमद्भागवत ११/१९/२१)

"मेरे भक्तों की पूजा मेरी पूजा से बढ़कर करे ।"

श्रीमानस जी में काकभुशुण्डि जी के गरुड़ जी के प्रति वचन –

'राम ते अधिक राम कर दासा ।'

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - १२०)

अतएव भगवान् के भक्तों, महापुरुषों के प्रति भेदबुद्धि रखना गंभीर भक्तापराध है जिसका परिणाम घोर नारकीय यातनाओं की प्राप्ति है । स्वयं भगवान् ने अपने श्रीमुख से कहा है –

ये मे तनूर्द्विजवरान्दुहतीर्मदीया
भूतान्यलब्धशरणानि च भेदबुद्ध्या ।
द्रक्ष्यन्त्यघक्षतदृशो ह्यहिमन्यवस्तान्
गृध्रा रुषा मम कुषन्त्यधिदण्डनेतुः ॥

(श्रीमद्भागवत ३/१६/१०)

भक्तों का शरीर मेरा ही शरीर है । मेरे श्रेष्ठ भक्तों, दूध देने वाली गायों और अनाथ प्राणियों को केवल भेद दृष्टि से देखने के ही कारण (भेद दृष्टि से क्रिया करना तो दूर की बात है) पापों से चेतना अर्थात् विवेक दृष्टि नष्ट हो जाती है । उसका फल यह होता है कि यमराज जी के द्वारा नियुक्त गीध रूपी दूत जो सर्प से अधिक क्रोधी होते हैं, नरक में भक्तों के प्रति भेद बुद्धि रखने वाले नराधमों के शरीर को नोच-नोच कर खाते हैं ।

इसलिए वैष्णव (भक्त) चाहे किसी भी वर्णाश्रम का है, हमारी उसके प्रति अभेद बुद्धि होनी चाहिए अन्यथा भेदबुद्धि करने पर नारकीय यातनाएँ भोगनी पड़ेंगी ।

जैसा कि श्रीकबीरदास जी के शब्दों में भगवान् ने कहा –

नारद मेरो साधुन सों अन्तर नाहीं ।
साधुन से अन्तर जो राखैं तेउ नरक में जाहीं ॥

श्रीसूरदास जी के शब्दों में भगवान् के वचन –

श्रीपति दुखित भक्त अपराधे ।
मम भक्तनि सौं बैर करत है सकल सिद्धि मोहि सों साधे ॥
जन सौं बैर प्रीति मोसों कर मेरो नाम निरन्तर लैहैं ।
सूरदास भगवंत वदत हैं मोहि भजे पै जमपुर जैहैं ॥

अथवा

हम भक्तनि के भगत हमारे ।
सुन अर्जुन परतिज्ञा मेरी यह व्रत टरत न टारे ॥
जो मम भक्तनि सों बैर करत है सो निज बैरी मेरो ।
देख बिचार भगत हित कारण हांकत हौं रथ तेरो ॥
जीते जीत भगत अपने की हारे हार बिचारो ।
सूरस्याम जो भगत बिरोधी चक्र सुदर्शन जारौ ॥

भगवद्भक्ति के प्रभाव व सतत् भगवच्चिन्तन से जीव भगवत्स्वरूप हो जाता है –

जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड - १२७)

फिर न उसकी कोई जाति शेष रहती है न ही कोई आश्रम। वर्णाश्रम के सारे भेद उसके सर्वथा नष्ट हो जाते हैं ।

श्रीमद्भागवत के एकादशवें स्कन्ध में योगेश्वर हरि ने राजा निमि को उत्तम भागवत का यही लक्षण बताया है –

न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः ।
सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥

(श्रीमद्भागवत ११/२/५१)

जिसमें श्रेष्ठ कुल में जन्म, शुभ कर्म तथा वर्ण-आश्रम एवं जाति के कारण किसी प्रकार का कोई देहजनित अहं नहीं होता, वह भगवान् का प्रिय भक्त है । श्रीचैतन्य महाप्रभु जी यही कहा करते थे कि –

नाहं विप्रो न च नरपति-र्नापि वैश्यो न शूद्रो
नाहं वर्णी न च ग्रहपति-र्नो वनस्थो यतिर्वा ।
किन्तु प्रोद्यन्निखिल परमानन्द पूर्णामृताब्धे-
र्गोपीभर्त्तुः पदकमलयो र्दासदासानुदासः ॥

न तो मैं ब्राह्मण हूँ, न क्षत्रिय हूँ, न वैश्य हूँ और न ही शूद्र हूँ; इसी प्रकार न मैं ब्रह्मचारी हूँ, न गृहस्थी हूँ, न वानप्रस्थी हूँ और न ही सन्यासी हूँ। फिर आपकी पहचान क्या है ? तो महाप्रभु जी कहते हैं 'गोपीभर्त्तुः पदकमलयो-र्दासदासानुदासः' मैं तो श्रीकृष्ण के चरणकमलों के दासों के दासों का दास हूँ ।

अस्तु काशी के जात्याभिमानी ब्राह्मणों ने भक्ति की शक्ति को न समझते हुए जातिवाद को लेकर ही जब श्रीरैदास जी की मूर्ति सेवा का विरोध किया, तब स्वयं ब्रह्मण्यदेव भगवान् ने चमत्कार दिखाकर श्रीरैदास जी का ही गौरव बढ़ाया और ब्राह्मणों को अपमानित होना पढ़ा । श्रीप्रियादास जी ने भक्तमाल की 'भक्तिरसबोधिनी' टीका में इस प्रसंग को विस्तार से लिखा है –

प्रीति रस रास सो रैदास हरि सेवत हे-
घर में दुराय लोक रञ्जनादि टारी है ।
प्रेरि दिये हृदै जाय द्विजनि पुकार करी-
भारी सभा नृप आगे कह्यो मुख गारी है ॥
जनकौं बुलाय समझाय न्याय प्रभु सौंपि-
कीनौं जग जस साधु लीला मनुहारी है ।
जिते प्रतिकूल मैं तो माने अनुकूल याते-
सन्तनि प्रभाव मनि कोठरी की तारी है ॥

(भक्तिरसबोधिनी, कवित्त २६५)

श्री रैदास जी ने जिस समय मूर्ति-पूजा आरम्भ की तो काशी के पण्डितों ने जातिवाद को लेकर ही उनका विरोध किया, काशीनरेश से

शिकायत की – महाराज ! रैदास का यह कर्म धर्मशास्त्रों के सर्वथा विरुद्ध है ।

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यपूजा व्यतिक्रमात् ।
तत्रस्तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम् ॥

'अर्थात् जहाँ पूज्य की पूजा न करके अपूज्यों की पूजा होती है, वहाँ दुर्भिक्ष, मरण व भय सदा ही रहता है ।' इसलिए रैदास को मूर्ति पूजा का कोई अधिकार नहीं है । प्रथम तो राजा ने रैदास जी को भय दिखाया, अनन्तर परीक्षा के लिए यह निश्चय किया गया कि भगवान् को यहाँ सिहासनासीन कर दिया जाये, उन्हें यदि रैदास की पूजा प्रिय होगी तो रैदास की गोद में आ जाएंगे और ब्राह्मणों की पूजा प्रिय होगी तो उनकी गोद में चले जाएंगे । ब्राह्मणों को यह अभिमान था कि हमें छोड़कर भला शूद्र के पास भगवान् क्यों जाने लगे अतः सबसे पहले ब्राह्मणों ने मृगचर्म, बाघम्बर पर बैठकर यज्ञादि किया, स्तोत्रों से आवाहन किया, किन्तु बहुत प्रयास के बाद भी मूर्ति हिली तक नहीं किन्तु रैदास जी को दण्डकारण्य के ऋषियों को छोड़कर, प्रभु का शबरी के आश्रम में जाना स्मरण था ।

विरद हेतु पुनीत परिहरि, पाँवरन सों प्रीति ।

श्री रैदास जी ने भावाभिभूत होकर यह पद गाया –

हे हरि आवहु वेगि हमारे ।
जैसे आये द्रुपद सुता के, गज के व्याज सिधारे ॥
ज्यों प्रह्लाद हेतु नरहरि ह्वै, प्रगटे बज्र खम्ब को फारे ।
पति राखो 'रैदास' पतित की, दशरथ राज दुलारे ॥

पद पूर्ण होते ही सिहासन सहित भगवान् श्री रैदास जी के हृदय से जा लगे ।

जाति भी ओछी, करम भी ओछा, ओछा वसब हमारा ।
नीचे से प्रभु ऊँच कियो है, कहै 'रैदास' चमारा ॥

अतः राम-कृष्णावतार सभी जीवों के कल्याणार्थ हुए हैं न कि केवल ब्राह्मणों के लिए । गोपीजनों ने गोपीगीत में कहा –

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं <u>विश्वमङ्गलम्</u> ।

(श्रीमद्भागवत १०/३१/१८)

यह अवतार विश्वमंगल के लिए हुआ है ।

श्री ब्रह्मा जी ने भी कहा –

तद्वा इदं भुवनमङ्गल मङ्गलाय
ध्याने स्म नो दर्शितं त उपासकानाम् ।

(श्रीमद्भागवत ३/९/४)

निराकार सत्ता का साकार होने का कारण ही था –

'भुवनमंगलमंगलाय'

भगवान् का यह रूप सम्पूर्ण संसार के मंगल के लिए प्रकट हुआ।

अतः हीन जाति के कारण श्रीरैदास जी को मीराबाई का गुरु न मानना यह बिल्कुल अनुचित है, संत-शास्त्र मर्यादा के विरुद्ध है और लोक में प्रचलित मान्यताओं के विरुद्ध भी ।

जातिवाद के कारण जिसके मन में शंका है, उनकी शंका के समाधानार्थ उपर्युक्त प्रमाण पर्याप्त हैं।

द्वितीय शंका-समाधान

श्रीमीरा जी ने कई पदों में तो प्रत्यक्ष रूप से सद्गुरु के रूप में संत श्रीरैदास जी का स्मरण किया है और कहीं-कहीं अप्रत्यक्ष रूप से 'सद्गुरु' शब्द से श्रीरैदास जी को संबोधित किया है । किन्तु बिडम्बना है कि कुछ विक्षिप्त मानसिकता के लोग इन पदों को प्रक्षिप्त मानते हैं, उनका कथन है कि ये पद मीराबाई द्वारा रचित नहीं है, जबकि इन पदों के भावों को यदि गंभीरता से देखें तो इनके भाव वही हैं, जिन भावों को मीरा जी ने अपने अन्य पदों में प्रकट किया है, इसलिए यह पूर्णांश में उन्हीं के द्वारा रचित पद हैं क्योंकि सम्पूर्ण भारतवर्ष में भी यह सर्वविदित है कि मीराबाई के गुरु रैदास जी थे और प्राचीन परम्पराएँ भी इसी बात को प्रमाणित करती हैं । जो अल्पज्ञान के कारण इन पदों को प्रक्षिप्त मानते हैं अथवा संत श्रीरैदास जी को मीराबाई का गुरु नहीं मानते हैं वे समाज के विनाशक हैं, क्योंकि शास्त्रों में कहा गया है –

यद्यपि शुद्धं लोक विरुद्धं न करणीयं न करणीयम् ।

उनकी यह अनधिकार चेष्टा लोक विरुद्ध भी है और मर्यादा विरुद्ध भी क्योंकि इस बात के कई साक्ष्य हैं, सर्वप्रथम तो मीराबाई के पद ही रैदास जी के गुरु होने के साक्ष्य हैं –

मीराँ हरि मन मानी सुरत सैल असमानी।
जब जब सुरत लगे वा घर की, पल पल नैनन पानी ॥
ज्यों हिये पीर तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी ।
रात दिवस मोहि नींद न आवत, भावै अन्न न पानी ।
ऐसी पीर विरह तन भीतर, जागत रैन बिहानी ॥
ऐसा वैद मिलै कोई भेदी, देस विदेस पिछानी ।
तासों पीर कहूँ तनकेरी, फिर नहि भरमों खानी ॥
खोजत फिरों भेद वा घर को, कोई न करत बखानी ।
<u>रैदास संत मिले मोहे सतगुरु दीन्हा सुरत सहदानी</u> ॥
मैं मिलि जाय पाय पिय अपना, तब मोरी पीर बुझानी ।
मीराँ खाक खलक सिर डारी, मैं अपना घर जानी ॥

अथवा

मेरो मन लागो हरिजी सूँ, अब न रहूँगी अटकी ॥
<u>गुरु मिलिया रैदास जी</u>, दीन्ही ज्ञान की गुटकी ।
चोट लगी निज नाम हरि की, म्हारे हिवड़े खटकी ॥
माणिक मोती परत न पहिरूँ, मैं कबकी नट की ।

गेणो तो म्हाँरे माला दोवड़ी, और चंदन की कुटकी ॥
राज कुल की लाज गमाई, साधाँ के सँग मैं भटकी ।
नित उठ हरिजी के मंदिर जास्याँ, नाच्याँ दे दे चुटकी ॥
भाग खुल्यो म्हाँरो साध संगत सूँ, साँवरिया की बटकी।
जेठ बहू की काण न मानूँ, घूँघट पड़ गई पटकी ॥
परम गुराँ के सरन मैं रहस्याँ, परणाम कराँ लुटकी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जनम मरण सूँ छुटकी।

अथवा

म्हाँरे गुरू गोविद री आण गौर ने ना पूजाँ ॥
औरज पूजै गोरज्याजी, थे क्यूँ पूजो न गोर ।
मन बाँछत फल पावस्यो जी, थे क्यूँ पूजो ओर ॥
नहि म्हें पूजां गोरज्याजी, नहि पूजां अन देव ।
परम सनेही गोविदो, थे काँई जाणो म्हारो भेव ॥
बाल सनेही गोविदो, साध सन्तां को काम ।
थे बेटी राठोड़ की, थाने राज दियो भगवान ॥
राज करे वाँने करणे दीज्यो, मैं भगतां री दास ।
सेवा साधु जनन की म्हारे, राम मिलण की आस ॥
लाजै पीहर सासरो, माई तणो मोसाल ।
सबही लाजै मेड़तियाजी, थासूँ बुरा कहे संसार ॥
चोरी कराँ न मारगी, नहीं मैं करूँ अकाज ।
पुन्न के मारग चालतां, झख मारो संसार ॥
नहि मैं पीहर सासरे, नहि पियाजी री साथ ।
मीराँ ने गोविन्द मिल्या जी, गुरू मिलिया रैदास ॥

अथवा

दूर पूरबला लिखिया लेख राणाजी नाम नहीं छोडूँ ।
पूरब जनम की पाली प्रीत राणाजी नाम नहीं छोडूँ ।
गुरु मिल्या म्हाने रैदास नाम नहीं छोडूँ ॥
मीराँ जनमी मेड़ते आण लिया अवतार ।
घर दूदाजी को तारियो अमर कीधों है जग में नाम ॥
तार्‌यो पीहर सासरो तारी वंश मेवाड़ ।
तार्‌यो दूदाजी को मेड़तो तार्‌यो चित्तौड़गढ़ कौ राज ॥
लाजे पीहर सासरो लाजे वंश मेवाड़ ।
लाजे दूदाजी को मेड़तो लाजे चित्तौड़गढ़ को राज ॥
मीराँ मेलां से ऊतरी भगवाँ रंगिया भेख ।
हिदू धरम में बैठणो पालो रजवाड़ा वाली प्रीत ॥
विष का प्याला भेजिया दो मीराँ के हाथ ।
कर चरणामृत पी गई राखण वाला रघुनाथ ॥
चार जणां ने भेजिया जावो मीराँ के पास ।
मर गई होवे तो जला दीज्यो नीतर दीज्यो समंद में डार ॥
साँप पिटारो मोकल्यो दो मीराँ के हाथ ।
खोल पिटारो देखिया हो गया नोसरहार ॥
साध हमारा शिर धणी मैं साधण की सेव ।
ये साधु मारे रूम-रूम में रम रया ज्यूं बादल बिच मेव ॥
ऊँचा हर का गोखड़ा नीचा सांवरिया का मेल ।
बाई मीराँ के गिरधर नागर चालूं साँवरिया थारी लेर ॥

इन पदों के अलावा भी उन्होंने अन्य पदों में भी सद्गुरु का स्मरण किया है, यद्यपि वहाँ उन्होंने प्रत्यक्ष रूप में नाम नहीं लिया है –

अब मीराँ मान लीज्यो म्हारी होजी थाने सखियाँ बरजे सारी।
मीराँ ने सतगुरूजी मिलिया, चरण कमल बलिहारी ॥

अथवा

राणांजी गिरधर रा गुण गास्याँ ।
गुरू-परताप साधरी संगति सहजै ही तिर जास्याँ ॥

अथवा

म्हारे जनम मरण रा साथी, थाँने नहि बिसरूँ दिन राती ।
यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूं मदमातो हाथी ।
सतगुरु हाथ धर्‌यो सिर ऊपर, अँकुस दै समझाती ॥

अथवा

गली तो चारों बंद हुई, मैं हरि सों मिलूँ कैसे जाय ॥
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, सतगुरु दई बताय ।

अथवा

बाला मैं वैरागण हूँगी ।
गुरु के ज्ञान रँगूँ तन कपड़ा, मन मुद्रा पैरूँगी ॥

अथवा

कोई कछू कहे गिरधर सों मेरो मन लागा ।
ऐसो प्रीत लगी मनमोहन, ज्यूँ सोने में सुहागा ॥
जनम जनम का सोया मनुआ, सतगुरु सब्द सुण जागा ।
मात पिता सुत कुटुंब कबीला, टूट गया ज्यूँ तागा ॥

अथवा

बरजी मैं काहू की नाहि रहूँ।
'मीरा' के प्रभु हरि अविनाशी, सतगुरु सरण गहूँ ॥

अथवा

साधो री संग छोड़ दीजो मती मांके लांछन लगाय ।
यो मारग म्हाने नीठ मिल्यो छे सतगुरु दियो बताय ॥

इसी तरह और भी बहुत से पदों में उन्होंने सद्गुरु के विषय में संकेत दिए हैं । किन्तु जैसे –**'फूलह फरइ न बेंत जदपि सुधा बरषहि जलद। मूरुख हृदय न चेत जौं गुर मिलहि बिरंचि सम ॥'** उसी तरह भावहीन भी इसको नहीं स्वीकार कर सकता, वह सभी पदों को प्रक्षिप्त

(मिलावटी) ही मानता रहेगा । ऐसे भावहीन (विमुख) लोग चाहे भले ही कितना भी अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन कर लें, किन्तु भक्तों की आलोचना करने के कारण वही विद्वत्ता उनके विनाश का कारण बन जायेगी। स्वयं भगवान् ने दुर्वासा जी से कहा है –

तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे ।
त एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा ॥

(श्रीमद्भागवत ९/४/७०)

तपस्या और विद्या कल्याण करती हैं यदि उनका सदुपयोग हो किन्तु यदि तप और विद्या के मद में कोई अविनीत होकर भक्तापराध करे तो वही कल्याणकारी तपस्या और विद्या उनके विनाश का हेतु भी बन जायेगी।

भगवान् शंकर ने भी कहा है –

विद्यातपोवित्तवपुर्वयः कुलैः
सतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः ।
स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दृशः
स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम् ॥

(श्रीमद्भागवत ४/३/१७)

विद्या, तप, धन-सम्पत्ति, सुन्दर शरीर, जवानी और अच्छे कुल में जन्म लेना – ये सब सज्जन स्वभाव वाले लोगों के लिए तो गुण रूप होते हैं किन्तु जो 'असत्तम' है, उसके लिए यही सब गुण उसके नाश का कारण बन जाते हैं क्योंकि अगर वह विद्वान् है तो विद्वत्ता के नशे में महज्जनों का अपमान करेगा, सत्शास्त्रों की अवहेलना करेगा, शास्त्रार्थ करके अपनी बात सिद्ध करेगा और यही सब चीजें उसको नारकीय यातनाओं की प्राप्ति करा देंगी।

विद्या पढ़ करतौ फिरै औरन को अपमान ।
नारायन विद्या नहीं ताहि अविद्या जान ॥

अस्तु विद्या का फल है – विवेक, विनम्रता की प्राप्ति न कि अहंकार, मद की वृद्धि ।

बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ । श्रम फल पढ़े किएँ अरु पाएँ ॥

(श्रीरामचरितमानस, अरण्यकाण्ड - २१)

अस्तु मीराजी ने कई पदों में संत रैदास जी को अपने गुरु के रूप में स्वीकार किया है, ये पद उन्हीं के हैं इनमें कोई मिलावट नहीं है, इन पदों के भाव मीराबाई के ही हैं, जब हम उनके पदों पर विवेकपूर्वक विचार करेंगे तब ही उनकी सत्यता समझ में आयेगी । जैसे एक पद में मीरा जी कहती हैं –

म्हाँरे गुरू गोविद री आण गौर ने ना पूजाँ ॥

यह पद मीराजी ने उस समय गाया जब नववधू के रूप में उनका चित्तौड़ आगमन हुआ और उन्हें देवी पूजन के लिए ले जाया गया तो वहाँ के राजपुरोहित ने मीरा जी से कहा कि बेटी ! भगवती गौरी का पूजन करो। मीराजी ने कहा कि मैं तो केवल गोविन्द की पूजा करती हूँ । राजपुरोहित जी बोले – मैं तेरा गुरु हूँ और पूरे चित्तौड़ राजवंश का गुरु हूँ । तुमको मेरी बात माननी पड़ेगी । मीरा ने कहा कि मेरे गुरु तो गोविन्द हैं । वहाँ देवी के मंदिर में बकरे की बलि चढ़ाई गई थी, बकरे का सिर काटा गया था और मीराजी से कहा गया कि यह देवी का प्रसाद है, इसे ग्रहण करो । मीरा बोली – क्या माँ अपने बच्चों को खाती है, मैं ऐसी देवी की पूजा नहीं करुँगी, मैं तो गोविन्द को पूजती हूँ जो दीनानाथ हैं । ऐसा कहकर मीरा जी ने देवी का प्रसाद मांस और रक्त नहीं ग्रहण किया । ऐसा करने पर राजगुरु ने उनको टेढ़ी नजर से देखा। मीरा की सखियाँ घबरा गयीं और बोलीं कि गुरुदेव नाराज हो गये तो राजा दंड देगा । राजगुरु ने कहा कि ये यहाँ की मर्यादा है । तुम नयी बहू के रूप में आई हो अतः देवी का पूजन करो । मीरा ने मना कर दिया तो उनकी सखियों ने कहा –

औरज पूजै गोरज्याजी, थे क्यूँ पूजो न गोर ।

सभी स्त्रियाँ गौरी का पूजन करती हैं फिर तुम क्यों नहीं उनका पूजन करती हो, राजगुरु नाराज हो रहे हैं । मीरा ने पूछा कि ये लोग देवी गौरी का पूजन क्यों करते हैं ? सखियों ने उत्तर दिया –

मन बाँछत फल पावस्यो जी, थे क्यूँ पूजो ओर ॥

देवी की पूजा से मनोवांछित फल मिलेगा । तुम इन देवी की पूजा छोड़कर किसी और देवता की पूजा क्यों करती हो ? मीरा जी ने कहा–

नहि म्हें पूजां गोरज्याजी, नहि पूजां अन देव ।

न तो मैं गौरी का पूजन करुँगी और न ही किसी अन्य देवता का पूजन करुँगी । तब सखियों ने पूछा कि फिर तू क्या करेगी ?

मीरा जी बोलीं –

परम सनेही गोविदो, थे काँई जाणो म्हारो भेव ॥

तुम इस भेद को नहीं जानती हो । गोविन्द देव जी ही एकमात्र प्रेम के आश्रय हैं । इस पंक्ति में मीरा जी ने श्रीमद्भागवत के सिद्धांत 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' का प्रतिपादन किया है कि श्री कृष्ण साक्षात भगवान् हैं और केवल उन्ही से प्रेम करना चाहिए । आगे उन्होंने कहा–

बाल सनेही गोविदो, साध सन्तां को काम ।

बाल्यावस्था से ही मेरी गोविन्द से मित्रता है । मेरे घर पर साधु-संत आया करते थे, उन्ही से मैंने गोविन्द जी से प्रेम करने की शिक्षा ली थी । मीरा जी की बात सुनकर उनकी सखियाँ बोलीं –

थे बेटी राठोड़ की, थाने राज दियो भगवान ॥

हाँ, हम जानतीं हैं । तुम राठोर वंश की कन्या हो, राजकुमारी हो, तुमको भगवान् ने बचपन से राज्य दिया है । भक्त में दैन्य होता है इसलिए मीरा जी अपनी सखियों की इस बात को सह न सकीं कि मैं

राजकुमारी हूँ। उन्होंने उत्तर दिया –

राज करे वाँने करणे दीज्यो, मैं भगतां री दास ।

मैं राजकुमारी नहीं हूँ । मैं तो भक्तों की दासी हूँ । जिसे राज्य करना है उसे राज्य करने दो । सखियों ने पूछा कि मीरा, देवी की पूजा करने से तो तुझे मनवांछित फल मिलेगा किन्तु भक्तों की दासी बनने पर तुझे क्या प्राप्त होगा ?

मीरा ने उत्तर दिया – देवी पूजन से तुमको संसार की धन संपत्ति की प्राप्ति होती है किन्तु मेरे माता-पिता ने मुझको सिखाया है –

सेवा साधु जनन की म्हारे, राम मिलण की आस ॥

भक्तों की सेवा से भगवान् मिलते हैं । जिनको धन संपत्ति आदि सांसारिक वस्तुओं की कामना है वे देवी पूजन करें । मुझे तो अपने गिरधर गोपाल के मिलन की अभिलाषा है । सखियाँ बोलीं – मीरा, ऐसा करने से तेरे पीहर की प्रतिष्ठा नष्ट हो जायेगी, ससुराल की प्रतिष्ठा नष्ट हो जायेगी । तेरे मौसियावंश, ननिहाल आदि की प्रतिष्ठा नष्ट हो जायेगी, तेरी जन्म भूमि मेड़ता का गौरव नष्ट हो जाएगा इसलिए आज तू यहाँ देवी का पूजन करले, आज पहला दिन है, फिर मत पूजना ।

लाजै पीहर सासरो, माई तणो मोसाल ।
सबही लाजै मेड़तियाजी, थासूँ बुरा कहे संसार ॥

तेरे ऐसे आचरण से तेरी माँ, तेरी मौसी आदि सभी कलंकित हो जायेंगी। सारा संसार तेरी निन्दा करेगा ।

मीरा ने इसका एक ही उत्तर दिया –

चोरी कराँ न मारगी, नहीं मैं करूँ अकाज ।

मैं चोरी नहीं करती हूँ, न किसी को मारती हूँ, किसी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं देती, कोई बुरा कार्य मैं नहीं करती हूँ ।

पुन्न के मारग चालतां, झख मारो संसार ॥

मैं तो गोविन्द को रिझाने के लिए गान और नृत्य करती हूँ क्योंकि यह भक्ति का मार्ग है । मुझे संसार की कोई परवाह नहीं है । यह संसार मेरी बदनामी करता है तो करता रहे ।

नहि मैं पीहर सासरे, नहि पियाजी री साथ ।

मीरा सखियों से कहतीं हैं कि तुम लोग मुझे शिक्षा देती हो कि मेरे आचरण से पीहर, ससुराल और पति की मान-प्रतिष्ठा नष्ट हो रही है तो इसका उत्तर सुन लो । न तो मैं अपने पीहर मेड़ता का आश्रय लूंगी, न तो ससुराल वालों का आश्रय लूंगी और न ही पति से मेरा किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध है ।

मीराँ ने गोविन्द मिल्या जी, <u>गुरू मिलिया रैदास</u> ॥

मेरा सम्बन्ध केवल इन दो से है, एक तो मेरे इष्ट देव गोविन्द जी, दूसरे मेरे सद्गुरुदेव संत रैदास जी जिन्होंने मुझे शिक्षा दी कि यह जगत नश्वर है, अतः एकमात्र प्रेम सम्बन्ध गिरधर गोपाल जी के साथ स्थापित करो । मुझे संत रैदास जी जैसे विलक्षण गुरुदेव का सत्संग प्राप्त हुआ, उनकी कृपा से ही मैं निर्भय होकर इस भक्ति मार्ग पर चल पड़ी हूँ और इससे पीछे हटने का अब कोई प्रश्न ही नहीं है ।

इस पद में मीरा जी ने निर्भीकता के साथ पूर्णतया स्पष्ट रूप से रैदास जी को अपना गुरुदेव घोषित किया है अतएव इन पदों को प्रक्षिप्त मानना अपनी अल्पज्ञता को प्रकट करना है ।

श्रीसुदामाकुटी, वृन्दावन से प्रकाशित भक्तमाल द्वितीय खण्ड में श्रीरैदास जी के चरित्र में पृष्ट संख्या ५४१ पर वृन्दावन के संतों ने भी श्रीमीराबाई और रैदास जी के सम्बन्ध में श्रीरामानन्दाचार्य चरितामृत का एक उद्धरण दिया है – श्रीरैदास जी के भक्ति-भाव से प्रभावित होकर श्रीमीराबाई जी ने भी इनसे उपदेश लिया था । यह बात श्री मीरा जी के पदों से ही प्रमाणित होती है । यथा-

मीरा मेरे संत हैं, मैं संतन की दास ।
चेतन संता सेन थे दीसत गुरु रैदास ॥
मीरा सदगुरु की करै वंदना आस ।
चित चेतन आतम महा धन्य भगत रैदास ॥
नहि मैं पीहर सासरे नहीं पिया के पास ।
मीरा को गोविन्द मिले गुरु मिले रैदास ॥

तृतीय शंका-समाधान

जो लोग तर्क देते हैं कि रैदास जी तो मीरा से पहले हुए हैं, जिस समय मीरा जी ३-४ वर्ष की थीं उसी समय रैदास जी धामगमन कर गए थे तो फिर मीराबाई को उनका संग कैसे प्राप्त हुआ ?

यह तर्क भी बिल्कुल निराधार है क्योंकि भक्तों के चरित्रों को समझना भगवच्चरित्र समझने से भी ज्यादा कठिन है । जब भगवान् के चरित्रों को ही देखकर बड़ों-बड़ों को मोह हो जाता है कि ऐसा कैसे हुआ ? यथा – ग्वाल-बालों के साथ श्रीकृष्ण की छाक-लीला को देखकर ब्रह्मा जी को मोह हुआ, भगवती सती को शिव जी के समझाने के पश्चात् भी मोहोत्पन्न हुआ, भगवान् के पार्षद गरुड़ जी को भी सर्पपाश में भगवान् श्रीराम के बँध जाने पर मोह हुआ, ऐसे बहुत से उदाहरण हैं । तब फिर भक्तचरित्रों को तो समझना और ज्यादा कठिन है । भक्तमाल के रचयिता श्रीनाभा जी से जब उनके गुरुदेव श्रीअग्रदेवाचार्य जी ने भक्तों के चरित्र लिखने को कहा तो नाभा जी ने समर्थ होते हुए भी साफ मना कर दिया और बोले कि गुरुदेव–

बोल्यो कर जोरि, याको पावत न ओर छोर,
गाऊं रामकृष्ण नहीं पाऊं भक्ति दाव को ।

भक्तों के चरित्रों को समझना बहुत कठिन है, यदि आप आज्ञा करें तो मैं भगवान् राम-कृष्ण के चरित्र तो सहजता से लिख सकता हूँ किन्तु भक्तों के चरित्र लिखना हमारी सामर्थ्य की बात नहीं है ।

अतः भक्तों के चरित्र को समझने में जब नाभा जी जैसे त्रिकालदृष्टा महापुरुष अपनी असमर्थता प्रकट कर रहे हैं तो फिर कोई ऐतिहासिक दृष्टि से भक्त चरित्र को क्या समझेगा?

तार्किक लोग भक्तचरित्रों को इतिहास से मिलाते हैं कि किस सम्वत् में रैदास जी हुए, मीरा जी किस सम्वत् में हुईं, तुलसीदास जी किस सम्वत् में हुए, अकबर किस समय हुआ आदि बहुत सी बातों का इतिहास से मिलान करते हैं और जब समय सही नहीं मिलता है तो तर्क प्रस्तुत करते हैं कि अमुक घटना असत्य है ।

श्रीरैदास जी को मीराबाई का गुरु न मानने के अलावा और भी मीराजी के जीवन की बहुत-सी प्रमाणित सत्य घटनाओं को तर्क के आधार पर मिथ्या मानते हैं । जैसे–

१. मीराबाई और तुलसीदास जी के मध्य हुये पत्र व्यवहार को मिथ्या मानना ।

२. मीराबाई के दर्शनार्थ तानसेन के साथ बादशाह अकबर का आना, इस घटना को मिथ्या समझना ।

३. वृन्दावन में मीराबाई और श्रीजीव गोस्वामी जी के मिलन को भी मिथ्या मानना ।

जबकि इन घटनाओं के साक्षी बड़े-बड़े महापुरुष हैं, जिन्होंने केवल इतिहास पढ़कर नहीं बल्कि प्रत्यक्ष भक्तों के जीवन चरित्र को अनुभव किया और इन सब घटनाओं को लिखा । आज के अल्पज्ञानी, मदोन्मत्त, नास्तिक और हठी लोग महापुरुषों द्वारा लिखी गयी इन सभी घटनाओं को अप्रमाणित करार देते हैं और कुछ किताबी ज्ञान के बल पर अपनी बात सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं ।

तुलसीदास जी से पत्र व्यवहार हुआ यह घटना मीराबाई के पदों एवं तुलसीदास जी के पदों से स्वयं प्रमाणित होती है ।

अकबर मीराबाई से मिलने तानसेन के साथ आया था, यह श्रीनाभा जी कृत भक्तमाल के टीकाकार श्रीप्रियादास जी ने 'भक्तिरसबोधिनी' टीका में कवित्त ४७९ में लिखा है –

रूप की निकाई भूप अकबर भाई हिये-
लिये संग तानसेन देखिवे कौं आयो है ।
निरखि निहाल भयौ छबि गिरिधारीलाल-
पद सुखजाल एक तबही चढ़ायो है ।

रीवा नरेश श्रीरघुराजसिह जी ने भी अपने 'रामरसिकावली' ग्रन्थ में भी यह घटना लिखी है –

यहि विधि मीरा को सुयश, प्रगट्यो सकल जहान ।
बादशाह अकबर सुन्यो, दरश हेतु हुलसान ॥
तानसेन को संग लै, अपनो वेष छिपाय ।
आयो मीरा जी निकट, बैठत भो शिरनाय ॥

मीराबाई ने स्वयं एक पद में कहा है –

माईरी मैं सँवलिया जानो नाथ ।
लेन परचो अकबर आयो, तानसेन लै साथ ॥

अन्यत्र भी अन्यान्य महापुरुषों ने इस घटना को लिखा है ।

इसी प्रकार चित्तौड़ छोड़ने के पश्चात् जब श्रीमीराबाई अपने आराध्य श्रीश्यामसुन्दर के नित्यलीलास्थल वृन्दावन धाम में आईं तो उस काल में वहाँ गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य श्रीजीवगोस्वामी जी विराजमान थे । श्रीमीरा जी की बड़ी उत्कट इच्छा थी उनके दर्शन करने की; क्योंकि सन्तों को वह अपने इष्ट से भी बड़ा मानती थीं ।

जीव गोसांई कोउ रहे, हरि रति रसिक सुजान ।
कबहुँ तासु पद दरश हित, मीरा मन हुलसान ॥

(श्रीरामरसिकावली)

श्रीजीव गोस्वामी जी के दर्शन की प्रबल उत्कंठा को लेकर वह उनके निवासस्थल पर पहुँच गयीं और वहाँ उनके किसी सेवक से श्रीजीव गोस्वामी जी के दर्शन की प्रार्थना की; उस सेवक ने जाकर श्रीगोस्वामी जी को बताया ।

उन्होंने विनम्रतापूर्वक सेवक से कहा कि उनसे जाकर कह दो –

मैं नारी मुख लखहुँ नहि, नेम कियो तजि आस ॥

'मैंने स्त्री मुख न देखने का प्रण कर लिया है ।'

सेवक ने जाकर श्रीजीव गोस्वामी जी के वचन श्रीमीरा जी से कह सुनाये; तब सेवक के माध्यम से उन्होंने पुनः संदेश भिजवाया –

कहि पठयो मीरा तबै, परदो बीच लगाय ।
संभाषण कीजै प्रभु, उभै अर्थ सधि जाय ॥

'हे प्रभु ! हमारे मध्य में एक पर्दा डाल दिया जाय, जिससे आपका प्रण भी नहीं टूटेगा और मुझे भी सत्संग लाभ मिल जायेगा ।'

जीव गोसांई मानि तब, भेज्यो ताहि बोलाय ।
पट केंवार के ओट में, बैठी सो शिरनाय ॥
मीरा तब कर जोरिकै, बोली वचन प्रेम ।

श्रीजीव गोस्वामी जी ने इसके लिए आज्ञा दे दी और मीरा जी को बुलवा लिया; मीरा जी शिर झुकाकर उनको प्रणाम करके पर्दे की ओट में बैठ गईं और हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक बोलीं –

श्रीरघुराज विना ब्रजराज दुती नहि पुरुष पूरुषनाईं ।
तू द्विती पूरुष ह्वै कस बैठे अहौ ब्रज में अब जीवगोसांई ॥

श्रीरघुराज सिह जी कहते हैं कि मीरा जी ने उनसे कहा कि मैंने समस्त वेद-पुराणों में, सन्तों के मुख से यही सुना है कि ब्रजराज श्रीकृष्ण के अलावा कोई द्वितीय पुरुष नहीं है और यहाँ ब्रज में तो विशेषकर अनन्त गोपियों के मध्य में एकमात्र पुरुष श्रीकृष्ण ही हैं । अन्य पुरुष का तो यहाँ प्रवेश ही नहीं है । भगवान् शंकर, नारदादि

तक को गोपी बनने के बाद ही यहाँ प्रवेश मिला था फिर यहाँ ब्रज में स्त्री मुख न देखने का प्रण किये आप द्वितीय पुरुष बनकर कैसे बैठे हो?

सुनि मीरा के वचन वर, कृष्ण मिलापी जानि ।
जीवगोसांई छोड़ि पट, मिले ढारि अँसुवानि ॥

श्रीमीरा जी के तात्त्विक वचन सुनकर जीव गोस्वामी जी समझ गये कि यह तो कोई गोपी है, जिसे श्रीकृष्ण के अलावा कोई दूसरा पुरुष ही नहीं दीखता है, ऐसी भक्ता से यदि मैं न मिलूँ तो अवश्य ही मेरी भक्ति नष्ट हो जायेगी, उसी समय वह पर्दा हटवाकर श्रीमीरा जी से मिले, उनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी । अतएव श्रीमीरा जी ने उनके स्त्री मुख न देखने के प्रण को तुड़वा दिया ।

श्रीभक्तिरस बोधिनी टीका में भी प्रियादास जी ने लिखा है –

वृन्दावन आईं जीव गुसाँईं सौं मिलि झिली
तिया मुख देखिवे को पन लै छुटायो है ।

अब तार्किक व्यक्ति ऐतिहासिक दृष्टि से घटनाक्रम का मिलान करेगा तो वह कभी भी नहीं समझ पायेगा क्योंकि जब नाभा जी जैसे महापुरुष कह रहे हैं कि 'भक्त चरित्र' लिखना-समझना बहुत कठिन है फिर कोई इतिहासकार क्या इन चरित्रों को समझेगा ?

क्या कोई इतिहासकार इस बात को स्वीकार करेगा कि किसी को अतितीक्ष्ण विष दिया जाय और वह न मरे ।

क्या कोई इतिहासकार इस बात को स्वीकार कर सकेगा कि महाविषधर सर्प 'शालिगराम शिला' के रूप में परिणत हो गये ।

क्या कोई इतिहासकार इस बात को स्वीकार कर सकेगा कि विषैली शूली-शैया कोमल पुष्पों के रूप में परिणत हो गई ।

ये सभी घटनाएँ मीराबाई के जीवन में घटित हुईं और उनके पद एवं अन्य महापुरुषों की वाणियाँ इन घटनाओं की प्रमाण हैं ।

मीराबाई के अलावा भी श्रीभक्तमाल जी में अन्य भक्तों के चरित्रों में ऐसी-ऐसी घटनाएँ घटी हैं कि जिन्हें न तो कोई इतिहासकार मान सकता है और न ही कोई तार्किक । जिनको केवल श्रद्धालु भक्तजन ही भगवत्कृपा से समझ सकते हैं अन्यथा तो सर्वसाधारण लोगों के लिए तो भक्तों के चरित्र समझना सर्वथा दुर्गम है ।

श्रीरैदास जी के चरित्र में ही ऐसी बहुत-सी घटनाएँ घटीं जो तर्कातीत हैं । एक बार काशीनरेश सन्त रैदास जी के दर्शन को आये, उस समय श्रीरैदास जी भगवान् की मानसी सेवा से निवृत्त हुए थे । जब काशीनरेश ने उन्हें प्रणाम किया तो भावावेश में रैदास जी ने कठौती में से चमड़ा भिगोने का जल देते हुए काशीनरेश से कहा – राजन् ! भगवान् का चरणामृत ग्रहण करो । राजा ने हाथ बढ़ाया तो कठौती के चमड़े के जल को पीने की इच्छा नहीं हुई लेकिन फेंकने का भी साहस नहीं हुआ । अत: उस जल को पीने का स्वांग करते हुए अपने कोट की बांहों में लुढ़का लिया । इससे कोट की बांहों में कुछ लाल निशान पड़ गया । राजा अपने घर को आये तो विचार करने लगे कि रैदास जी ने यह अत्यन्त अनुचित कार्य किया, उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था, आखिर वे हैं तो चमार ही अत: अपनी कठौती का दूषित जल ही दे बैठे। काशीनरेश ने उस कोट को धोबी को धोने के लिए दे दिया । धोबी के अनेकों प्रयत्नों के पश्चात् भी कोट से लाल दाग नहीं छूटा तब वह उसे दांतों से रगड़कर छुड़ाने लगा । ऐसा करने पर दाग का थोड़ा रस उसके मुँह में चला गया । उसके प्रभाव से तत्काल ही उसका हृदय शुद्ध हो गया । वह भगवान् के प्रेम में मतवाला हो गया और सम्पूर्ण जगत उसे राममय प्रतीत होने लगा । कोट धोना भी भूल गया और अपनी प्रेमोन्मत्त दशा में काशीनरेश के पास पहुँचा । सारी घटना देखकर वह बहुत पछताये कि यदि मैंने रैदासजी द्वारा दिये गये उस जल को पी लिया होता तो मेरे हृदय में भी भगवत्प्रेम का आविर्भाव हो जाता । अपनी भूल पर पछताते हुए काशीनरेश तुरन्त सन्त रैदासजी की कुटियापर पहुँचे और चरणामृत देने की प्रार्थना करने लगे । रैदासजी ने विनम्रतापूर्वक कहा कि चरणामृत तो यह जल उसी समय था, अब तो वास्तव में यह चमड़ा भिगोने का अशुद्ध जल ही है ।

इसी प्रकार एकबार गुरु गोरखनाथ जी श्रीरैदास जी से मिलने आये, प्यास की अनुभूति होने पर रैदासजी से जल की याचना की तो उन्होंने गोरखनाथ के खप्पर में अपनी कठौती का जल भर दिया । यह देखकर गोरखनाथ घृणा से भर गये और विचार करने लगे कि रैदास स्वयं चमार हैं और मुझे चमड़ा भिगोने वाला कठौती का दूषित जल दे दिया है तो उन्होंने उसे पिया नहीं परन्तु गिराया भी नहीं । वह खप्पर में उसी जल को लेकर सन्त कबीरदासजी के पास गये । श्रीकबीरदासजी ने खप्पर को जल से भरा देखकर पूछा कि यह क्या है ? तो उन्होंने रैदास जी की करतूत सुनायी । उसी समय सन्त कबीरदासजी की पुत्री कमाली वहाँ निकट ही बैठी थी । वह रैदास जी की अनुपम भक्ति से परिचित थी अतः वह उस जल को पी गयी । रैदास जी की कठौती का जल पीते ही उसके अंत:करण में दिव्य ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न हुआ । कुछ दिनों पश्चात् कमाली का विवाह हुआ, विवाहोपरान्त वह अपने पति के साथ मुल्तान चली गयी । कुछ समय पश्चात श्रीगोरखनाथ जी अपने मत के प्रचार हेतु भ्रमण को निकले । अपनी योगसिद्धि के बल पर वह सबको प्रभावित कर लेते थे । उनके पास एक खप्पर था जो सिद्धि बल के कारण कभी भरता नहीं था । वह लोगों से कहा करते थे कि जो मेरे खप्पर को भर देगा, उसी का दिया भोजन मैं ग्रहण करूँगा। देश - देशान्तर में वह भ्रमण करते रहे किन्तु पूरे देश में राजा से रंक तक कोई भी उनके खप्पर को न भर सका । भ्रमण करते हुए संयोगवश वह मुल्तान जा पहुँचे, वहाँ कमाली ने उनको घर पर निमंत्रण दिया ।

जब गोरखनाथ जी कमाली के घर भोजन करने पहुँचे तो कमाली ने परदे की आड़ से उनके सामने भोजन का थाल प्रस्तुत किया । गोरखनाथ जी ने कमाली से अपना खप्पर भरने को कहा तो कमाली ने चम्मच से चावल लेकर उनके खप्पर में डाल दिया । थोड़े से ही चावल से उनका खप्पर भर गया । श्रीगोरखनाथजी ने अत्यन्त आश्चर्यपूर्वक कमाली से इस चमत्कार का रहस्य पूछा तो उसने उत्तर दिया कि यह तो रैदास जी की कठौती के जल का प्रभाव है तब गोरखनाथ जी को रैदास जी की महिमा का ज्ञान हुआ और वहाँ से तत्काल ही काशी पहुँचकर रैदासजी के पास पहुँचे और उनकी कठौती का जल पीने लगे। तब रैदास जी ने कहा –

प्याते थे तब पिया नहीं, जिन पिया पिया को जान लिया ।
भूला जोगी फिरे दीवाना वह पानी मुल्तान गया ।

तब गोरखनाथजी केवल हाथ को मलते रह गये ।

ऐसे सिद्ध महापुरुष के जीवनकाल में भी लोग उनकी महिमा को न जानकार उनसे घृणा करते रहे और वही कुचक्र आज भी रचने का दुस्साहस कर रहे हैं । आधुनिककाल के संकीर्ण बुद्धि के विचारक, यह तर्क देकर कि रैदासजी की जो जन्मतिथि है उसके आधार पर वह मीराजी से बहुत पहले हुए हैं इसलिए इस बात का कोई औचित्य सिद्ध नहीं होता कि मीरा जी उनकी शिष्या थीं । महापुरुषों के अस्तित्व सम्बन्धी काल की आधुनिक शोध के द्वारा गणना करना पूर्णतया अनुचित है । प्रियादासजी ने गोस्वामी नाभाकृत भक्तमाल की टीका उनके धामगमन के पश्चात् की थी और उसके लिए भी नाभा जी ने आकाशवाणी के माध्यम से उन्हें आज्ञा दी थी कि मेरे ग्रन्थ की आप टीका करें ।

इसी प्रकार वृन्दावन के परम रसिक सन्त श्रीहरिराम व्यासजी सन्त कबीरदासजी की यथार्थ महिमा को समझ न सके तो उन्होंने यह कह दिया कि कबीरदास तो वृन्दावन के राधामाधव के दिव्यरस से अपरिचित रहे, उन्हें इस रस की प्राप्ति न हो सकी । ऐसा कहते ही उन्हें जो निकुंज-लीला का साक्षात्कार होता था, वह बन्द हो गया। अत्यंत दुःखी होकर वह अपने गुरुदेव हितहरिवंश महाराज जी के पास गये। गुरुदेव ने कहा कि तुमने सन्त कबीरदासजी के प्रति अपराध किया है इसीलिए तुम्हें लीला की अनुभूति नहीं हो रही है । इसके प्रायश्चित के लिए तुम्हें सन्त कबीरदास जी से क्षमा याचना करनी होगी। सन्त कबीर तो व्यास जी से सैकड़ों वर्ष पूर्व हुए थे अतः व्यास जी ने शंका की कि कबीरदास जी तो इस पृथ्वी पर अब हैं नहीं, मैं उनसे कैसे क्षमा माँगूंगा? श्री हिताचार्य जी ने कहा कि भगवान् के ये दिव्य भक्त भगवान् की तरह अविनाशी होते हैं, सदा सर्वदा विराजमान रहते हैं । गीता में भगवान् ने कहा है – **"न मे भक्त: प्रणश्यति"** हे अर्जुन ! मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता । इसलिए हिताचार्य जी ने अपने शिष्य व्यास जी को समझाया कि यमुना तट पर जाकर कबीर-कबीर नाम का जप करो । दैन्यपूर्वक उनका स्मरण करने पर तुम्हें कबीरदास जी का साक्षात्कार होगा तब तुम उनसे क्षमा माँग लेना । गुरुदेव की आज्ञा से व्यास जी ने यमुना तट पर कबीरदास जी का स्मरण करते हुए उनका नाम जप किया तो उन्होंने क्या देखा कि यमुना जल के भीतर से कबीरदास जी प्रकट हो रहे हैं और एक दोहा बोल रहे हैं –

कबिरा-कबिरा क्या कहत, जा जमुना के तीर ।
एक गोपी के प्रेम पर, बह गए कोटि कबीर ॥

कबीरदास जी का दर्शन करते ही व्यास जी ने तुरंत उनके चरणों में प्रणत होकर क्षमा याचना की, उसके बाद उन्हें पुनः राधा-माधव की लीलाओं का साक्षात्कार होने लगा । यह कथा पूर्णतया सत्य है और भक्तमाल में वर्णित है । अब आधुनिक इतिहासकार जो जन्म-मृत्यु के आधार पर काल गणना करते हैं वे इसे कैसे समझ सकते हैं कि हरिराम व्यास जी को कई वर्ष पूर्व हुए कबीरदास जी ने वर्षों बाद उन्हें दर्शन दिया ।

इसी प्रकार भक्तमाल में निम्बार्क सम्प्रदाय के महान आचार्य श्री हरिव्यास देव जी के बारे में उल्लेख है कि उनके नित्यधाम गमनोपरान्त एक दाक्षिणात्य ब्राह्मण श्रीरूपरसिकजी ने हरिव्यासदेवाचार्य जी की महिमा श्रवण करने पर दृढ़ निश्चय किया कि मैं उन्हीं से गुरुदीक्षा ग्रहण करूँगा परन्तु जब वह दक्षिण भारत से ब्रज आये तो उन्हें पता चला कि आचार्य चरण तो नित्यलीला में प्रवेश कर गए हैं । अत्यन्त दुःखी होकर रूप रसिक जी ने अनशन करके देह त्याग करने का विचार किया और तीन-दिन बिना अन्न जल ग्रहण किए वह मथुरा के विश्राम घाट पर पड़े रहे । उनकी सुदृढ़ निष्ठा से अभिभूत होकर श्री हरिव्यासदेवाचार्य जी ने नित्य धाम से आकर उन्हें दर्शन दिया और कहा कि श्री राधारानी की आज्ञा से मैं तुम्हें उपदेश देने के लिए आया हूँ । तदनन्तर श्री हरिव्यास देव जी ने पंच संस्कार पूर्वक श्रीरूपरसिकजी को वैष्णवी दीक्षा प्रदान की तथा लीला चिन्तन हेतु अपना स्वरचित अमूल्य ग्रन्थ श्रीमहावाणीजी उन्हें सौंपा और आदेश दिया कि इसका प्रचार करना। श्रीगुरुदेव की आज्ञा से रूप रसिक जी के द्वारा भक्ति का प्रचुर प्रचार-प्रसार हुआ । अब इस घटना से आधुनिक तथाकथित इतिहासकारों और विद्वानों को विचार करना चाहिए कि जब नित्यधामगमन के पश्चात् भी श्रीरूपरसिकजी को श्री हरिव्यास देवाचार्य जी के द्वारा गुरुदीक्षा प्राप्त हुई तो वे अपनी भौतिकतावादी मानसिकता के आधार पर काल गणना करते हुए जो यह तर्क देते हैं कि श्री रैदास जी मीरा जी से बहुत वर्षों पहले हुए हैं अतः उनका मीरा जी का गुरु होना प्रमाणित नहीं होता यह विचार पूर्णतया खंडित हो जाता है ।

श्री हित हरिवंश जी महाराज के प्रधान एवं परम शिष्य नाद कुल भूषण रसिक शिरोमणि श्री हित सेवक जी (श्रीदामोदर दास जी) को इनके निवास स्थान गोंडवाना की राजधानी गढ़ा-मण्डला में ही नित्यधाम से आकर श्रीहरिवंश महाप्रभु जी ने वैष्णवी दीक्षा प्रदान की और अपना शिष्य बनाया । घटनाक्रम इस प्रकार है कि सोलहवीं शताब्दी में जन्मे श्रीसेवक जी (दामोदरदास जी) के पिता के बड़े भाई के एक पुत्र श्रीचतुर्भुज दास जी थे । ये दोनों भाई बड़े होनहार थे, सम्पूर्ण रूप से संसार के विषय सुखों से अनासक्त होकर निरंतर सत्संग-भजन-सेवा में अपना कालक्षेप करते थे ।

उन दिनों भक्ति के प्रचारार्थ संतजन जमातें लेकर सम्पूर्ण भारत में भ्रमण करते थे तो जब भी कोई संत जमात लेकर गोंडवाना की ओर जाते तो इनकी साधु सेवा, भजन-कीर्तन की प्रसिद्धि सुनकर वे इन्हीं के यहाँ ठहरते थे । इसी तरह वृन्दावन से संत-महात्माओं की एक मण्डली इनके यहाँ पहुँच गयी । इन्होंने संतों का बड़ा ही आदर सत्कार किया । श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदाय के संत श्रीनवलदास ने श्रीसेवक जी और श्रीचतुर्भुज दास जी को वृन्दावनस्थ वंशी के अवतार परम रसिक संत श्रीहित हरिवंश महाप्रभु जी के विषय में बताया । दोनों भाइयों की श्रीहरिवंश महाप्रभु जी को ही गुरु बनाने की प्रबल इच्छा हुई और वे दोनों भाई उन संतों के साथ वृन्दावन आने के लिए तैयार भी हो गए किन्तु किन्हीं विशेष कारणों से विवश होकर वे उस समय नहीं आ सके । इसी तरह ३ माह व्यतीत हो गए, उसके बाद जब वे दोनों भाई वृन्दावन आने लगे तो संयोग से वृन्दावन के कुछ संत उनके यहाँ पधारे । उन दोनों भाइयों ने उनसे विनम्र शब्दों में श्रीहरिवंश महाप्रभु जी के सम्बन्ध में पूछा तो संतों ने बड़ा दुःख प्रकट करते हुए यह अमंगल समाचार दिया कि महाप्रभु तो अपनी लीला संवरण करके चले गए । दोनों भाई यह समाचार सुनकर मूर्च्छित से हो गए, अपने भाग्य को कोसने लगे कि यदि हम ३ माह पहले ही वृन्दावन चले गए होते तो हमें सद्गुरु की प्राप्ति हो गयी होती । फिर दोनों ने विचार किया अब क्या करें वृन्दावन चलें कि नहीं तब श्रीचतुर्भुज दास ने तो अपनी राय प्रकट करते हुए कहा कि वृन्दावन चलना ही उचित है, वहाँ अभी महाप्रभु जी के पुत्र श्री वनचन्द्र जी विराजमान हैं, उन्हीं से गुरु दीक्षा ले लेंगे । श्रीदामोदर दास जी ने कहा कि मैंने तो हृदय से श्रीहरिवंश महाप्रभु जी को सद्गुरु रूप में स्वीकार कर लिया है और मैं तो अब उन्हीं से दीक्षा लूंगा ।

चतुर्भुज दास जी श्रीवनचन्द्र जी से दीक्षा लेने के लिए श्रीधाम वृन्दावन चले आये और श्रीदामोदर दास जी अपने घर के ही समीप एक अश्वत्थ वृक्ष के नीचे इस कठोर संकल्प को लेकर बैठ गए कि जब तक श्रीहिताचार्य स्वयं प्रकट होकर मुझे दीक्षा नहीं देंगे, अपना शिष्य नहीं बनायेंगे तब तक मैं यहाँ अन्न-जल त्यागकर एक आसन से बैठा रहूँगा चाहे हमारे प्राण ही क्यों न चले जायें । इस तरह वह आठ दिन तक वहीं भूखे-प्यासे बैठे रहे, तब उनकी प्रबल निष्ठा की जय हुई । आठवें दिन उन्हें थोड़ी तंद्रा आई और उसी समय उनके समक्ष नित्यधाम श्रीवृन्दावन अपनी सम्पूर्ण शोभा के साथ प्रकट हो गया । उसी समय उनके मस्तक पर अपना कर कमल रखते हुए श्री हितहरिवंश महाप्रभु जी ने कहा – प्रिय दामोदर । मेरे प्रिय सेवक! उठो! तुम्हारी सच्ची निष्ठा के कारण मुझे तुम्हें कृतार्थ कर शिष्य रूप में स्वीकार करने के लिए आना पड़ा। तुम मेरे सच्चे सेवक हो और आज से संसार में तुम्हारा नाम 'सेवक' ही विख्यात होगा । उसके बाद महाप्रभु जी ने उन्हें दीक्षा प्रदान की ।

इसलिए दिव्य महापुरुषों-भक्तों को अपनी संकुचित बुद्धि से नापना तौलना तो ऐसा ही है जैसे कोई कुएं का मेढक अनन्त जलराशि वाले महासागर की अथाह जलराशि का अनुमान लगाए । ऐसे आध्यात्मिक विषयों को केवल श्रद्धा के बल पर ही समझा जा सकता है, तर्क द्वारा नहीं ।

इसीलिए भगवान् ने गीता में कहा है –

'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्'

श्रद्धावान को ही ज्ञान की प्राप्ति होती है तथा जो महापुरुषों और शास्त्रों के प्रति श्रद्धा नहीं रखता उनके प्रति भगवान् के वचन हैं –

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ४/४०)

भक्ति शास्त्रों, भक्त और भगवंत के प्रति अश्रद्धालु और संशयात्मा मनुष्य का अतिशीघ्र विनाश अर्थात् घोर पतन हो जाता है । ऐसे लोग कुतर्कों के मकड़जाल में ही फँसे रहेंगे ।

ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः ।
यदा तदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लुतम् ॥

(श्रीमद्भागवत २/६/४०)

श्रीब्रह्माजी ने कहा कि नारद ! शान्त अन्तःकरण, इन्द्रियाँ एवं शरीर से ही उस परमतत्त्व का साक्षात्कार किया जा सकता है ।

असत् पुरुषों के द्वारा कुतर्कों का बिछा हुआ जाल तो उसे ढक ही देता है ।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ९/३)

श्रीभगवान् ने कहा – ऐसे श्रद्धाहीन लोग मुझे प्राप्त न करके मृत्यु रूप संसार चक्र में ही भटकते रहते हैं ।

चतुर्थ शंका-समाधान

कुछ विद्वज्जन ऐसा तर्क देते हैं कि श्रीरैदास जी तो निर्गुणोपासक थे और मीराबाई माधुर्यभाव की सगुणोपासिका थीं तो श्रीरैदास जी इनके गुरु कैसे हो सकते हैं ? यदि वह गुरु होते तो दोनों की उपासना पद्धति में भिन्नता नहीं होनी चाहिए थी ।

किन्तु तार्किकों का यह तर्क उनकी अबोधता का सूचक है क्योंकि कहाँ है श्रीरैदास जी और श्रीमीराबाई की उपासना पद्धति में भिन्नता? भक्तों की उपासना की यथार्थता को तद्भावभावित भक्त ही अनुभव कर सकते हैं न कि कोई तार्किक ।

श्री रैदास जी ने कहा है –

सो कहा जानै पीर पराई । जाके दिल में दरद न आई ॥

भक्तों के अन्तःकरण के भावों को भगवान् अथवा शुद्ध भक्त की कृपा के बिना समझना असम्भव है।

रैदास जी की ही तरह उनके गुरुभाई श्रीकबीरदास जी को भी अधिकांश लोग अपने मतिदौर्बल्य के कारण निर्गुणोपासक समझते हैं। अरे यहाँ तक कि ब्रज के महान रसिक संत विशाखा सखी के अवतार श्रीश्रीहरिराम व्यास जी शंका कर बैठे कि श्रीकबीरदास जी को श्रीराधामाधव की लीलाओं का रस नहीं मिला, केवल उन्होंने शुष्क सिद्धान्तों की ही चर्चा की है अपनी वाणियों में; उनके मन में ऐसा विचार आते ही उनका लीला-चिन्तन बाधित हो गया, बहुत प्रयास करने के पश्चात् भी उन्हें लीलाओं का स्फुरण नहीं हुआ तब उन्होंने सारी घटना श्रीहित हरिवंश जी महाराज से कह सुनाई, उन्होंने कहा आपसे बहुत बड़ा भक्तापराध हुआ है क्योंकि भक्तों में अभाव करने मात्र से ही भक्तापराध लग जाता है । अरे! कबीरदास जी से बढ़कर कौन रसिक हो सकता है? कबीरदास जी का कैसा अन्तःकरण था श्री प्रियादास भक्तिरसबोधिनी टीका में लिखते हैं –

'अति ही गम्भीर मति <u>सरस कबीर ह्यिो</u>'

'मति अत्यन्त गम्भीर, हृदय प्रेमाभक्ति से परिपूर्ण अत्यन्त रसमय ।'

अतः श्री हरिवंश जी ने कहा कि तुमसे अनजान में ऐसे महापुरुष के प्रति अभाव रूपी अपराध हुआ है । बिना भक्तापराध की निवृत्ति के तुम्हें लीलाओं की स्फूर्ति नहीं होगी । भक्तापराध की निवृत्ति तभी सम्भव है जब जिस भक्त का अपराध किया है उसी से क्षमा माँग ली जाय । अतः तुम यमुना जी के किनारे कबीरदास जी का स्मरण करो, वह अवश्य प्रकट होकर तुम्हें क्षमा कर देंगे । व्यास जी ने ऐसा ही किया । कबीरदास जी प्रकट हुए, तब व्यास जी ने उनकी कीर्ति का गान करते हुए यह पद गाया –

कलि में साँचो भक्त कबीर ।
जबते हरि चरनन रति उपजी तबते बुन्यो न चीर ॥
दीनो लेहि न जाँचै काहू ऐसो मन को धीर ।
जोगी जती तपी सन्यासी इनकी मिटी न पीर ।
पांचतत्त्व ते जन्म न पायो काल न ग्रस्यो सरीर ॥
'व्यास' भक्त को खेत जुलाहो हरि करुणामय नीर ॥

और उन्होंने जाकर के कबीरदास जी के चरण पकड़ लिए, बारम्बार क्षमा याचना की । कबीरदास जी ने दैन्यतापूर्वक कहा कि व्यास जी आपकी शंका उचित थी क्योंकि मेरी वाणियों में अधिकतर सिद्धान्त चर्चा है किन्तु यह भगवत्प्रेरणा थी ।

व्यास जी की भ्रान्ति निवृत्त हो गई और तब से वह महापुरुषों की यथार्थ महिमा से परिचित हुए और उनकी रसमयी उपासना पद्धति को अपनी वाणी में व्यक्त किया –

नाँचत गावत हरि सुख पावत ।
नाँचि गाइ लीजै दिन द्वै, पुनि कठिन काल दिन आवत ॥
नाँचत, नाऊ, भाट, जुलाहौ, छीपा नीकै गावत ।
पीपा अरु <u>रैदास</u> विप्र जयदेव सुभलैं रिझावत ॥

नृत्यगानमयी, रसमयी उपासना से भगवान् को सुख प्राप्त होता है। स्वयं भगवान् के वचन हैं –

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

अथवा

गीत्वा च मम नामानि नर्तयेन्मम सन्निधौ ।
इदं व्रबीमि ते सत्यं क्रीतोऽहं तेन चार्जुन ॥

व्यास जी कहते हैं कि इन सभी (सैन नाई, भाट, जुलाहा कबीरदास जी, छीपा नामदेव जी, पीपा जी, और श्रीरैदास जी आदि) भक्तों ने नृत्यगानमयी, रसमयी उपासना के माध्यम से ही भगवान् को रिझाया ।

यह पद इस बात का प्रमाण है कि मीराबाई की तरह श्रीरैदास जी भी रसीली भक्ति के ही उपासक थे । इसीलिए तो व्यास जी ने उनके विषय में इतनी बड़ी बात लिख दी –

व्यास बड़ाई छाँड़िकैं, हरि चरनन चित जोरि ।
एक भक्त रैदास पर, वारौं बाँमन कोरि ॥

अथवा

इतनौं है सब कुटुंब हमारौ ।
सैन, धना, अरु नामा, पीपा और कबीर, रैदास चमारौ ॥

श्रीध्रुव दास जी ने भी भक्तनामावली में यही लिखा है –

जगत विदित पीपा, धना, अरु रैदास कबीर ।
महाधीर दृढ़ एक रस, भरे भक्ति गम्भीर ॥

'पीपाजी, धन्नाजी, रैदासजी, कबीरदासजी आदि भक्त बड़े गम्भीर

और दृढ़व्रती थे तथा इनका हृदय भक्तिरस से परिपूर्ण था ।'

अस्तु भक्तों की भजन पद्धति को प्रायः सामान्यजन नहीं समझ पाते हैं और मिथ्या तर्क प्रस्तुत करते हैं । ऐसे महापुरुषों की उपासना बिना भगवत्कृपा के दुर्बोध है ।

मीराबाई और श्रीरैदास जी की भजन-पद्धति एक ही रही है । उनकी भजन-पद्धति में भिन्नता की कल्पना करना अपराध है । जो उनके गुरुदेव रैदास जी एवं अन्य समकालीन संत कबीर, सूर, तुलसी आदि उपासना पद्धति रही है वही मीरा जी भी उपासना पद्धति थी यथा–

* लोकलाज को छोड़कर नृत्य-गान (रसमयी-आराधना) द्वारा अपने गिरिधरगोपाल को रिझाना ।
* श्रीकृष्णोक्ति 'मद्भक्तपूजाभ्यधिका' के अनुसार सन्त-भक्तों को भगवान् से बड़ा मानकर उनकी सेवा करना एवं भक्ति का मूल है भक्तसंग । यथा –

'भगति तात अनुपम सुख मूला ।
मिलहि जो संत होहि अनुकूला ॥'
'गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन ।
बिनु हरि कृपा न होहि सो गावहि वेद पुरान ॥'

'सतां प्रसंगान्मम वीर्य संविदो भवन्ति हृत्कर्ण रसायनाः कथाः ।
तज्जोषणादाश्वपवर्ग वर्त्मनि श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥'

(श्रीमद्भागवत ३/२५/२५)

आदि शास्त्रीय सिद्धान्तों के आधार पर अहर्निश भक्तों का संग करना । इसी उपासना पद्धति से जीवनपर्यन्त उन्होंने उपासना की। रैदास जी भी इसी भाव से सन्तों की सेवा सत्संग करते थे –

आज दिवस लेऊँ बलिहारा । मेरे घर आया राम का प्यारा ।
आंगन बँगला भवन भयो पावन । हरिजन बैठे हरिजस गावन ।
करूँ दण्डवत चरन पखारूँ । तन-मन-धन उन उपरि बारूँ ।
कथा कहैं अरु अरथ बिचारै । आप तरै औरन को तारैं ।
कह रैदास मिलैं निज दासा । जनम जनम कै काटैं पासा ॥

मीरा जी ने स्वयं यह अपने पदों में कहा कि इस प्रकार उपासना पद्धति मुझे मेरे गुरुदेव श्रीरैदास जी ने सिखाया था –

गुरु म्हारा दीनदयाल हीराँ रा पारखी ।
दियो म्हाने ग्यान बताय, संगत कर साधरी ॥

अथवा

अब नहि बिसरूँ, म्हाँरे हिरदे लिख्यो हरि नाम ।
म्हाँरे सतगुरु दियो बताय, अब नहि बिसरूँ रे ॥
मीराँ बैठी महल में रे, ऊठत बैठत राम ।
सेवा करस्याँ साध की, म्हाँरे और न दूजो काम ॥

ऊदाबाई ने मीरा जी से कहा –

भाभी मीरा सुनो कान दे समझो मन के मांय ।
साधां रो संग छोड़ दीजो मती मांके लांछन लगाय ।

तब मीरा जी ने जबाब दिया –

यो मारग म्हाने नीठ मिल्यो हे सतगुरु दियो बताय ॥

इसीलिए मैं उन्हीं के पदचिन्हों का अनुकरण करके आराधनरत् हूँ क्योंकि 'महाजनो येन गतः स पंथा' महापुरुषों ने जिस मार्ग का अवलम्बन लिया है वही मार्ग श्रेष्ठ है, निर्विघ्नतापूर्ण है ।

कोई निन्दो कोई बिन्दो, म्हें तो गुण गोविन्द का गास्यां ।
जिण मारग म्हांरा साध पधारे, उण मारग म्हे जास्यां ॥

अस्तु कुछ आधारहीन संकुचित संकीर्ण विचारधाराओं के कारण कुछ अभागे लोग इतनी निकृष्टता पर उतर आये हैं कि राजस्थान धरोहर संरक्षण एवं प्रोन्नति प्राधिकरण द्वारा राजस्थान के चित्तौड़गढ़ में बनाए जा रहे श्रीमीराबाई एवं झाली रानी के गुरुदेव संत श्रीरैदास जी की स्मृति में, 'श्रीरैदास' पेनोरमा (स्मारक) निर्माण कराये जाने का विरोध कर रहे हैं । विरोध करने वाले कोई और नहीं बल्कि वही लोग हैं जो अपने आप को मीरा जी का अनुयायी घोषित करते हैं । यह बड़े आश्चर्य की बात है कि वही लोग चित्तौड़ में बनने वाले संत श्रीरैदास जी के पेनोरमा पर प्रश्न चिन्ह लगा रहे हैं । यह कठोर शब्द अवश्य हैं किन्तु हैं सत्य । ऐसे लोग मीराबाई के अनुयायी नहीं बल्कि उनको पीड़ा पहुँचाने वाले सबसे बड़े शत्रु हैं । जो अपराधजन्य कार्य ५०० वर्ष पूर्व राणा जी के परिवारीजनों ने किया था वही आज ये लोग कर रहे हैं । इन लोगों में और राणा जी के परिवारीजनों में कोई अन्तर नहीं रहा । अरे, श्रीमीरा जी का क्या व्यक्तित्व था! और हम किस दिशा में चल रहे हैं; हमें इतना भी ज्ञान नहीं है! मीराबाई ने अपने जीवन में बहुत यातनाओं को सहन किया, सिर्फ इस बात के लिए कि मैं साधु संग करना नहीं छोड़ सकती हूँ, इसके लिए भले ही मुझे सिर ही क्यों न कटाना पड़े । आज हम जैसे लोग जो अपने आप को उनका अनुयायी घोषित करते हैं, संत श्री रैदास जी के पैनोरमा बनने का विरोध सिर्फ कुछ आधारहीन तर्कों के आधार पर कर रहे हैं । यह कितने लज्जा की बात है । कहाँ तो मीराबाई जिन्होंने बड़ी-बड़ी यातनाएँ सहन करके भी संत-संग नहीं छोड़ा, सारी राज्य सत्ता के विरोध करने पर भी वे निडरता पूर्वक साधुसंग करती रहीं । जब उनके महल में संतों के आवागमन पर राणाजी ने पाबंदी लगा दी तो मीरा जी ने चित्तौड़ को छोड़ दिया क्योंकि संत ही उनके सब कुछ थे ।

साधू मात पिता कुल मेरे, सजन सनेही ज्ञानी ।
सन्त चरण की सरण रैन दिन, सत्य कहत हूँ बानी ॥

चित्तौड़ में बड़ी-बड़ी रियासतों के राजा लोग आते थे किन्तु मीरा जी उनको देखकर प्रसन्न नहीं होती थीं अपितु उन्हें पीड़ा ही होती थी।

हम जैसे अभक्त लोग इन राजा-रजवाड़ों को महत्त्व देते हैं किन्तु मीरा जी तो उनको कूड़ा-करकट समझती थीं। उन्होंने स्वयं कहा –

नहि भावै थारो देसड़ लोजी रंगरुड़ो ।
थारा देसा में राणा साधु नहीं छै, लोग बसे सब कूड़ो ॥

'हमें ये चित्तौड़ इसलिए अच्छा नहीं लगा क्योंकि यहाँ भक्त लोग, संत लोग नहीं हैं, देश की तो शोभा भक्तों से होती है न कि ऊँची -ऊँची अट्टालिकाओं से ।' जो मीरा ने इस पद में जो कहा वही सिद्धान्त श्रीमद्भागवत जी में भी प्रतिपादित है –

स वै पुण्यतमो देशः सत्पात्रं यत्र लभ्यते ।

(श्रीमद्भागवत ७/१४/२७)

'जहाँ भगवान् के भक्तजन होते हैं, वही सबसे पवित्र और कल्याणकारी देश है ।'

यद्यपि चित्तौड़ राजपूताने की सबसे बड़ी रियासत थी और राजपूताने में राणा सांगा की बड़ी प्रसद्धि थी । अधिकांश रियासतें उनके अधीन थीं और मीराबाई उनके ज्येष्ठ पुत्र भोजराज की पत्नी थीं यानि चित्तौड़ की महारानी । इतना सब होते हुए भी मीरा जी इससे बिल्कुल भी प्रभावित नहीं होती थीं क्योंकि जो शुद्ध भक्त होते हैं, उनको ऐश्वर्यादि प्रभावित नहीं कर पाते हैं । इन सबको देखकर तो विमुखजन ही प्रभावित होते हैं । उनकी ऐसी स्थिति थी कि उन्हें तो राणा सांगा के परिवारीजन काल की तरह प्रतीत होते थे । यह उन्होंने स्वयं कहा है –

'नातो साँगो परिवारो सारो मुँने लगै मनौ काल ।'

इसलिए मीरा जी क्या थीं और उनका व्यक्तित्त्व क्या था? पहले हमें यह समझना चाहिए ।

लोकलाज कुल श्रृंखला तजि मीरा गिरिधर भजी ॥
सदृश गोपिका प्रेम प्रकट कलिजुगहि दिखायो ।
निरअंकुश अति निडर रसिक जस रसना गायौ ॥
दुष्टनि दोष विचारि मृत्यु को उद्यम कीयौ ।
बार न बाँकौ भयौ गरल अमृत ज्यौं पीयौ ॥
भक्ति निसान बजायकै काहू ते नाहिन लजी ।

(श्रीभक्तमाल, छप्पय ११५)

नाभाजी ने मीराजी को इस घोर कलिकाल में साक्षात् प्रकट गोपिकावतार बताया । 'निरंकुश' अर्थात् उन्होंने भक्ति विरुद्ध किसी का भी शासन नहीं माना, 'अतिनिडर' बारम्बार मृत्यु का सामना करना पड़ा किन्तु कभी भी वे डरी नहीं । कई वर्षों तक उन्हें भीषण यातनाएं दी गयीं जो सारा संसार जानता है किन्तु वे कभी अपने सिद्धान्तों से विचलित नहीं हुईं ।

जब मैं चली साध के दरसन तब राणो मारण कूँ दोर्‌यो ॥
जहर देन की बात बिचारी निर्मल जल में लै विष घोल्‌यो ।

उन्हें यातनाएँ सिर्फ इस बात पर दी गयीं कि वह साधु-संग नहीं करे, इससे सिसोदिया वंश की बदनामी होती है–राणा सांगा ने स्वयं अपनी पुत्री ऊदाबाई के द्वारा यह संदेश मीरा जी तक भिजवाया था ।

आयकै ननन्द कहै गहै किन चेत भाभी!
साधुनि सौं हेत में कलंक लागै भारियै ।
राना देशपति लाजै बाप कुल रीति जात
मानि लीजै बात वेगि संग निरवारियै ॥

(श्रीप्रियादास जी कृत, 'भक्तिरसबोधिनी' कवित्त ४७५)

श्रीप्रियादास जी के अलावा भी स्वयं मीरा जी ने अपने पदों में कहा कि साधु-संग से मुझे रोकने के लिए राणा सांगा ने मेरे पास कई बार ऊदाबाई को भेजा । यथा –

अब मीराँ मान लीज्यो म्हारी थाने सखियाँ बरजे सारी ।
राजा बरजै राणी बरजै, बरजै सब परिवारी ॥
साधुन के ढिग बैठ बैठ के, लाज गमाई सारी ॥
नित प्रति उठि नीच घर जावो, कुल कूँ लगाबो गारी ।

अथवा

थांने बरज बरज मैं हारी, भाभी मानो बात हमारी ।
राणो रोस कियो थाँ ऊपर, साधों में मत जारी ॥
कुल को दाग लगै छै भाभी, निदा हो रही भारी ।
साधां रे संग बन बन भटको, लाज गमाई सारी ॥

लेकिन मीरा जी राज्यसत्ता के आगे झुकी नहीं उन्होंने कठोर शब्दों में साफ-साफ जवाब दे दिया –

लागे प्रान साथ सन्त पावत अनन्त सुख
जाको दुख होय ताको नीके करि टारियै ।

(श्रीप्रियादास जी कृत, 'भक्तिरसबोधिनी' कवित्त ४७५)

'संत मेरे प्राण हैं, मैं इनको नहीं छोड़ सकती हूँ । जिसको ये सब देखकर दुःख होता है वह मुझसे दूर रहे ।'

बरजी मैं काहू की नाहि रहूँ ।
साधु-संगति कर हरि सुख लीजै, जग सूँ दूर रहूँ ।
तन-धन मेरो सबहि जावो, भलो मेरो सीस लहूँ ॥

मीरा जी के दो-टूक जवाब को सुनकर उन्हें मारने के लिए विष दिया गया, यह प्रथम बार विष राणा सांगा के समय पर उनको दिया गया, यह घटना उनके विवाह के कुछ समय पश्चात् की ही है ।

श्रीरघुराज सिह जी ने रामरसिकावली में भी लिखा है –

मीरा नाम जग्यो जगमाहीं । आवैं सन्त अनन्त तहांही ॥
करैं भजन गिरिधर के मंदिर । प्रगटत रोजहि आनन्द चंदिर ॥
रोजहि सन्त जेवांयकै, रोजहि चरण पखारि ॥
सलिल शीश मीरा घरहि, नयन प्रेम जल ढारि ॥

गिरिधर ढिग लै आप तमूरा । गावै सुन्दर पद रचि पूरा ॥
दशा देखि राजा की रानी । आई सब अति अमरष सानी ॥
लगीं बुझावन बहुविधि मीरै । क्यों उपजावति कुलकहँ पीरै ॥
मुडियन को बहु संग न कीजै । निज कुलरीति सदा गहि लीजै।
सुनिहै तुवि गति जो महाराना, तौ किमि बची तोरि पुनि जाना ।
तब मीरा बोली हँसि वानी । का समुझावहु मोहि अज्ञानी ॥
तुमहि न समुझि परै संसारू । देखि परै मोहि नंदकुमारू ॥
कही सासु तब अमरष सानी । तैं अज्ञानी मोहि कह अज्ञानी ॥
मम कुलदेव अहैं यह लिगा । करै तासु तैं भजन अभंगा ॥
तब मीरा अस गिरा उचारी । सोउ सेवैं मेरे गिरिधारी ॥
जाहु सबै घर जनि बतराहू । मेरे मरे न कछु दुख दाहू ॥
मोहितो संत संग सुख होई । और बात बोलौ जनि कोई ॥
अस सुनि मीरा के वचन, सासु ननद अनखाय ।
राना के ढिग जायकै, दीन्हीं दशा सुनाय ॥
मीरा चरित सुनत तब राना । कुलकलंक मीराकृत माना ॥
मनमहँ लीन्हो तुरत विचारी । मीरा जाय कौन विधि मारी ॥
तब रानी अस कह्यो तुरत विचारी । मीरा जाय कौन विधि मारी।
तब रानी अस कह्यो उपाई । यहि विधि सों नहि बची बचाई ॥
<u>जहर घोरि कंचन के प्याला । कहि चरणामृत गिरिधरलाला</u> ॥
<u>तेहि ढिग भेजि देहु महराना । पावत ही करिहै सो पाना</u> ॥
राणा जहर घोरि यह प्यालै । सासु हाथ पठयो तेहि आलै ॥
सासु कह्यो मीरा तू जाई । तोरि चूक दियो माफ कराई ॥
है प्रसन्न तोपर महराना । चरणामृत पठयो भगवाना ॥
तब मीरा अस वचन बखाना । गिरिधरलाल सत्य भगवाना ॥
ताकर तुम चरणामृत लाई । मेरो सब विधि दियो बनाई ॥
असकहि लियो जहर कर प्याला ।कियो पान कहि गिरिधरलाला।
गिरिधरलाल समीप सिधाई । सासु ननद कहँ गई लेवाई ॥

उसी समय श्रीमीरा जी ने यह पद गाया था –

राणाजी जहर दियौ हम जानी ॥
जैसे कंचन दहत अगिनि में निकसत बारा वाँणी ।
लोक लाज कुल कानि जगत की दई बहाय जस पाँणी ॥
अपने घर का परदा करले मैं अबला बौराँणी ।
तरकस तीर लग्यौ मेरे हियड़े गरक गयौ सनकाँणी ॥
सब सन्तनि पर तन मन बारूँ चरण कमल लपटाँणी ।
मीरा के प्रभु राखि लई है दासी आपणी जाँणी ॥

उन्होंने निर्भय होकर विष का प्याला ले लिया और यह कहते हुए उसे पान कर गयीं कि इस जहर को तो मैं प्रसन्न मन से पी जाऊँगी किन्तु साधु-सन्तों के संगत्याग रूपी विष की झार (गन्ध) भी नहीं सह सकती।

सुनिकै कटोरा भरि गरल पठाय दियौ
लियौ करि पान रंग चढ़यौ यों निहारियै ॥
गरल पठायौ सो तौ सीस लै चढ़ायौ
संग त्याग विष भारी ताकी झार न सँभारी है ।

(श्रीप्रियादास जी कृत, 'भक्तिरसबोधिनी' कवित्त ४७५,४७६)

साधु-संग निष्ठा के उनके कई पद द्रष्टव्य हैं –

"तू मत बरजै माई री मैं तो साधा दरसण को जाती ।"
"सब संतन पर तन-मन वारूँ, चरण कमल लिपटाणी ।"
"गई कुमति लई साधू संगति भगत रूप भई सांची ।"
"राज कुल की लाज गँवाई, साधां के संग भटकी ।"
"साधुन के ढिग बैठ-बैठ, लाज गमाई सारी ।"
"राज करे वानें करणे दीज्यो ,मैं भगतां री दास ।
सेवा साधु जनन की म्हारे राम मिलण की आस ॥"

अस्तु राणा संग्राम सिह ने व उनके परिवारीजनों ने (उनकी रानियों कर्मवती (कर्णावती) आदि ने, पुत्र विक्रमादित्य ने एवं पुत्री ऊदाबाई ने) श्रीमीराबाई जी के द्वारा सन्तों का संग करने का विरोध किया और जब वे नहीं मानी तो उन्हें मारने का प्रयत्न किया । इसी भक्तापराध के कारण राणा सांगा का वंशसहित नाश हुआ किन्तु इस बात को तार्किक लोग नहीं समझ सकते हैं । मीरा चरित्र को लिखने वाले अधिकांश अर्वाचीन लेखकों का मानना है कि मीराबाई को जो भी यातनाएँ दी गयीं वो सब विक्रमादित्य के राणा बनने पर दी गयीं पर राणा सांगा के समय में उन्हें चित्तौड़ में किसी ने नहीं सताया । किन्तु यह अपूर्ण सत्य है, राणा विक्रम ने तो उन्हें कष्ट दिए ही यह तो सर्वविदित है किन्तु राणा संग्राम सिह ने भी उनपर अत्याचार करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। यह कोई कपोलकल्पित बात नहीं, स्वयं महापुरुषों ने यह लिखा है एवं मीरा जी के पदों से भी यह बात स्वतः प्रमाणित होती है ।

यह बात सत्य है कि राणा सांगा की छवि राजपूताने में बहुत अच्छी है क्योंकि वे कुशल शासक होने के साथ-साथ महापराक्रमी भी थे । उन्होंने विदेशी आक्रमणकारियों से मेवाड़ की व समीपवर्ती रियासतों की अपने शासनकाल में बड़ी वीरता से सुरक्षा की । किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि समझदार लोग भक्तापराध नहीं करते हैं, अधिकतर भक्तापराध अच्छे लोग ही करते हैं । श्रीमद्भागवत में नारद जी ने प्रचेतागणों से कहा है –

न भजति कुमनीषणां स इज्यां
हरिरधनात्मधनप्रियो रसज्ञः ।
श्रुतधनकुलकर्मणां मदैर्ये
विदधति पापमकिञ्चनेषु सत्सु ॥

(श्रीमद्भागवत ४/३१/२१)

भगवान् तो अधनात्मधन हैं अर्थात् निष्किञ्चन भक्तों के धन हैं, जो लोग श्रुत (विद्वता), धन (सम्पत्ति), कुल (उच्च कुल में जन्म) और कर्म (अच्छे कर्म) के मदों में भक्तों का अपराध करते हैं, भगवान् उनके सत्कार्यों को स्वीकार नहीं करते हैं ।

अस्तु इन सब श्रुत, धन, कुल, कर्मों आदि के मद में बड़े-बड़े प्रख्यात लोग भक्तापराध करते हैं और फिर वही अपराध उनकी दुर्गति का कारण बनता है ।

भगवान् ने नारद जी से कहा है (इसको कबीरदास जी ने एक पद में लिखा है) –

नारद मेरो साधुन सों अन्तर नाहीं ।
जो मेरे भक्तनि दुःख देवे कुल समेत तेहि खोऊँ ॥

भगवान् ने अर्जुन से कहा है (इसको सूरदास जी ने एक पद में लिखा है) –

हम भक्तन के भक्त हमारे ।
सुन अर्जुन परतिज्ञा मेरी यह व्रत टरत न टारे ॥
जो मम भक्तन सों बैर करत है सो निज बैरी मेरो ।
देख बिचार भगत हित कारन हांकत हौं रथ तेरो ॥
जीते जीत भगत अपने की हारे हार बिचारों ।
सूरस्याम जो भक्त विरोधी चक्र सुदर्शन जारौं ॥

श्रीमद्भागवत में भगवान् ने कहा है –

छिन्द्यां स्ववाहुमपि वः प्रतिकूल वृत्तिम् ।

(श्रीमद्भागवत ३/१६/१०)

'यदि मेरी भुजा भी भक्तापराध करेगी तो मैं उसे भी काट डालूँगा।'

कुछ विद्वान् यह मत रखते हैं कि मीराबाई को जो यातनाएँ दी गयीं वे राणा विक्रमादित्य के राजसिहासन पर बैठने पर विक्रम और उसकी बहिन ऊदाबाई ने दीं, राणा संग्राम सिह एवं उनकी रानियों ने मीराबाई को नहीं सताया । परन्तु उनका यह मत बिल्कुल निराधार है ।

स्वयं मीराबाई के पदों के विरुद्ध है ।

महापुरुषों ने जो मीरा जी का चरित्र लिखा है, उसके विरुद्ध है ।

श्रीभक्तमाल जी में श्रीनाभा जी ने स्वयं लिखा है –

दुष्टनि दोष विचारि मृत्यु को उद्यम कीयौ ।

'दुष्ट परिवारीजनों ने मीरा में दोष देखा और उन्हें मारने के लिए अनेकों प्रयत्न किये ।'

श्रीध्रुवदास जी ने भक्तनामावली में लिखा है –

बंधुनि विष ताकौं दियौ, करि विचार चित आन ।

'दुष्ट लोगों ने उनके चरित्र पर शंका की, दोष-दर्शन किया और उन्हें मारने का प्रयत्न किया ।'

दुष्ट लोगों का स्वभाव ही होता है परदोष दर्शन करने का –

गुन में अवगुन खोजहीं प्रकृति के जो नीच ।
जैसे जूही बाग़ में सूकर खोजहीं कीच ॥

अन्यथा मीरा जी की पवित्रता के सम्बन्ध में श्रीहरिराम व्यास जी ने लिखा है कि मीराबाई का चरित्र गंगा की भांति पवित्र था –

मीराबाई बिन को संतन पिता जान उर लावे ।

उनका ऐसा विशुद्ध भाव था संतों के प्रति, जैसे कोई छोटी-सी बच्ची अपने पिता से बिना किसी दूषित भाव के लिपट जाती है, वैसे ही मीराबाई जी संतों को पिता समझकर शुद्ध भाव से उनसे लिपट जाती थीं । किन्तु दुष्ट (दूषित) स्वभाव के लोग उनके इन कार्यों से उनमें दोष दर्शन करते और कई बार उन्हें मारने का प्रयत्न किया ।

श्रीभक्तमाल के टीकाकार श्रीप्रियादास जी लिखते हैं कि जब मीराबाई ने विवाह के बाद चित्तौड़ पहुँचने पर सास के बार-बार कहने पर भी देवी पूजन करने को मना कर दिया तो –

तबतौ खिसानी भई, अति जरि बरि गई,
गई पति पास, यह बधू नहीं काम की ।

मीरा जी का कठोर उत्तर सुनकर उनकी सास क्रोधित हो उठी, ईर्ष्या की अग्नि में जलने लगी और वह अपने पति राणा सांगा के पास गई, वहाँ जाकर उसने कहा कि यह नववधू हमारे काम की नहीं है । क्यों, क्या हुआ–राणी जी ने पूछा ? तब उसने बताया –

अबहीं जवाब दियौ, कियौ अपमान मेरौ,
आगे क्यौं प्रमान करै ? भरै स्वांस चाम की ।

इस नववधू ने आज ही चित्तौड़ में प्रवेश किया और अभी से जवाब देने लग गई, फिर आगे चलकर मेरी क्या बात मानेगी?

राना सुनि कोप कर्‌यौ, धर्‌यौ हिये मारिवोई,
दई ठौर न्यारी, देखि रीझी मति बाम की ॥

अपनी पत्नी की बातें सुनकर राणा सांगा भी क्रोधित हो गए और उन्होंने मीरा जी को मारने का मन में निश्चय कर लिया ।

(यहाँ श्रीप्रियादास जी ने साफ-साफ लिख दिया है कि राणा सांगा ने स्वयं मीराबाई को मारने का संकल्प कर लिया ।)

रामरसिकावली में रीवा नरेश श्रीरघुराज सिह जी ने भी इस बात को लिखा है –

राना लै बरात घर आयो । मीरै वधू प्रवेश करायो ॥
दुलहिनि दूलह लै तहँ सासु । गे कोहबर कुलदेव निवासू ॥
तहँ कुलदेव मूर्ति अति पावन । मीरहि पूजा लगीं करावन ॥
वृद्ध वृद्ध आईं जुरि नारी । लागीं सिखावन रीति उचारी ॥
तब मीरा बोली मुसक्याई । पूजा रीति मोहि नहि भाई ॥

यदुकुलदेव देवकहँ त्यागी । द्वितीय देवकर सेवन रागी ॥
कही सासु तब मंजुल वानी । मम कुल रीति बहू नहि जानी ॥
ये कुलदेव सदा के म्हारे । पूजे रही सोहाग तिहारे ॥
यह सुनि चितै चाहूं कित मीरा ।बोली विधिवन लखि मति धीरा ।
इनके पूजत बढ़ै सोहागा । यह जो कह्यो मृषा मोहि लागा ॥
ये सब तिय जे तुब घर आईं । पूजे ह्वैहैं देव सदाईं ॥
भई कहौ विधवा केहि हेतु । मोहि दीसैं द्वै चारि निकेतू ॥
सासु बहू के वचन सुनि, कह्यो वचन अति कोपि ।
दुलहिनि देहरी देत पग, दई लाज सब लोपि ॥
और सबै राना की रानी । राना सों चलि वचन बखानी ॥
भयो कुमार विवाह उछाहू । पै यह अति दारुण दुखदाहू ॥
बहू ढीठि वैकलि बिन लाजू । करै यथोचित नहि कुलकाजू ॥
राना सुनि मन मानि गलानी । रानी सों अस गिरा बखानी ॥
भूतमहल महँ देहु अवासू । आपहि ते ह्वै जैहै नासू ॥
तब दुलहिनि मीरा को लाई । भूतमहलमहँ दियो टिकाई ॥
कियो कुँवरकर द्वितीय विवाहू । मीरा मान्यो महा उछाहू ॥
जो नैहरते सम्पति लाई । तामें इक मंदिर बनवाई ॥
गिरिधरलालहि तहाँ पधारी । पूजहि रोज मानि सुख भारी ॥
बजैं झांझरी शंख नगारे ।गये प्रेत सब देव अगारे ॥

इन प्रमाणों को देखने के बाद मन में शंका के लिए कोई स्थान ही नहीं बचता है कि राणा सांगा एवं उनकी स्त्रियों ने मीरा को कष्ट नहीं पहुँचाया। मीराबाई ने जो अपने पदों में जहर देने की बात कही है, वह राणा संग्राम सिह के लिए भी कही है, उनको २-३ बार जहर दिया गया। राणा संग्राम सिह के समय में भी उनके कहने पर दिया गया और राणा विक्रम के समय में भी दिया गया अर्थात् उनको प्रताड़ित राणा विक्रम ने तो किया था उसके पूर्व भी सभी परिवारीजनों ने उन्हें बहुत क्लेश दिए। इसलिए उन्होंने अपनी आत्मगाथा में बार-बार इन सबका वर्णन किया। मीरा जी ने स्वयं कहा कि राणा जी यदि हमारी बात मानते, हमसे बिना किसी हेतु के बैर न करते तो मैं सकुटुम्ब इनको भगवद्धाम (वैकुण्ठ) ले जाती किन्तु इन्होंने मुझसे द्वेष करके, मेरा विरोध करके, मुझे यातनाएँ देकर स्वयं अपना विनाश किया –

राठौड़ाँ री धीयड़ी जी, सीसोद्याँ रे साथ ।
ले जाती वैकुण्ठ कूँ, म्हाँरी नेक न मानी बात ॥

अथवा

राणो जी मोपर कोप्यो रे, रती न राख्यो मोद ।
ले जाती वैकुण्ठ में यो तो समझयो नहीं सिसोद ॥

जो मीरा जी कह रही है, यही सिद्धान्त भागवत में ऋषभ भगवान् ने कहा है –

'महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेः'

'महापुरुषों की सेवा, उनमें श्रद्धा करना, भाव रखना, यह भगवद्धाम जाने का सीधा उपाय है ।' किन्तु उन लोगों ने मीरा जी के प्रति भाव की जगह अभाव किया, इसीलिये सकुल नाश हुआ ।

इसके विपरीत उदाहरण है कि भक्तों में भाव रखने मात्र से ही क्या लाभ प्राप्त होता है ? ऊपर बता चुके हैं कि अगर राणा सांगा के समस्त परिवारीजन मीरा के प्रति मात्र भाव ही रखते तो वे सब अमर व अजेय हो जाते और चित्तौड़ पर भी कोई संकट न आता।

भक्तों में भाव रखने के उदाहरण देखिये –

मीरा जी के चरित्र में श्रीरामरसिकावली में श्रीरघुराज सिह जी ने लिखा है –

जादिन मीरा दरश करि, अकबर आयो धाम ॥
तादिन कोउ अकबर ऊपर, करिकै मारन काम ॥
पुरश्चरण अति घोर किय, हनूमान को ध्याय ।
पवनपूत कोपित महा, तुरत आगरे आय ॥
अकबर को मारन गयो, धारे गदा कराल ।
तहँ ठाढ़े देखत भयो, दोऊ दशरथलाल ॥
तब प्रभुपद शिरनायकै, आयो लौटि तुरंत ।
करता के शिर देत भो, गरू गदा हनुमंत ॥
यह मीरा के दरश को, जानहु सकल प्रभाव ।
मरत भयो अकबर अमर, राखि लियो रघुराव ॥

मुगल बादशाह अकबर जब तानसेन के साथ वेश बदलकर मीरा जी के दर्शन के लिए आया तो वह मीरा जी के दर्शन कर बड़ा ही प्रभावित हुआ और अपने को धन्य मानने लगा कि मुझे ऐसे खुदा के बन्दे के दर्शन हुए और उसने भाव पूर्वक मीरा जी के गिरिधारीलाल को एक मणिमाला भी भेंट की, तो इसका लाभ उसे मिला । श्रीरघुराज सिह जी लिखते हैं कि जब मीरा जी के दर्शन करके अकबर लौटकर आगरा अपने निवासस्थान पर पहुँचा तो उस समय अकबर के किसी शत्रु ने उसके ऊपर मारण प्रयोग किया । उसने हनुमान जी का पुरश्चरण किया और उन्हें प्रसन्न करके भेजा अकबर को मारने के लिए। जब हनुमान जी रौद्र रूप धारण करके कुपित होकर आगरा पहुँचे अकबर को मारने के लिए तो वहाँ देखते हैं कि अकबर के समीप में श्रीराम-लक्ष्मण उसकी रक्षा के लिए खड़े हैं, तब हनुमान जी भगवान् के चरणों में प्रणाम करके लौटकर आये और भेजने वाले को ही मार डाला । ऐसा क्यों हुआ? भगवान् ने अकबर की रक्षा क्यों की? जबकि वह तो आततायी था तो रघुराज सिह जी लिखते हैं –

यह मीरा के दरश को, जानहु सकल प्रभाव ।
मरत भयो अकबर अमर, राखि लियो रघुराव ॥

उसने जो भावपूर्वक मीरा जी का दर्शन किया था ये उसी का प्रभाव था । ***जब भक्त में थोड़ा-सा भाव रखने मात्र से एक पापी म्लेच्छ की भगवान् रक्षा कर सकते हैं तो क्या राणाजी के कुल की प्रभु रक्षा नहीं करते*** किन्तु उन्होंने मीरा में भाव रखने की जगह उन्हें यातनाएँ पहुँचा ने की चेष्टाएँ कीं, इसलिए उनका सवंश विनाश हुआ, स्वयं रघुराज सिह जी आगे कहते हैं –

येतहु पै राना कुमति, मीरहि जान्यो नाहि ।
मीरा सों करि वैर अति, भूलि रह्यो जगमाहि ॥

'वैर अति' माने बहुत ज्यादा वैर किया मीरा जी से, इसलिए तो मीरा जी ने अपनी आत्मकथा का वर्णन अपने पदों में किया कि इन सबने मुझे किस तरह की यातनाएँ दीं ।

दूसरा उदाहरण –

एक भक्ता हुई हैं रानी रत्नावती जी; ये आमेर नरेश मानसिह के छोटे भाई माधौसिह जी की पत्नी थीं। ये भी मीरा जी की ही तरह संतों-भक्तों में बड़ा ही भाव रखती थीं । इन्होंने भी संत-संग करने के लिए लोक-लज्जाओं को तोड़ दिया था तो इनके पति माधौसिह इनसे ईर्ष्या करने लगे और इनको मारने के लिए उन्होंने सिह भी भेजा था किन्तु प्रभु कृपा से उन्हें कुछ नहीं हुआ । तब माधौसिह इनकी भक्ति को समझ गये और इनसे उन्होंने क्षमा माँगी और उसी दिन से माधौसिह जी रत्नावती जी का बड़ा आदर करने लगे । एक बार की घटना है कि बादशाह अकबर ने मानसिह और माधौसिह दोनों को ही काबुल एक युद्ध पर भेजा, वहाँ से विजय होकर ये दोनों लौट रहे थे –

राजा मानसिह माधौसिह उभै भाई चढ़े,
नाव पर कहूँ तहाँ बूड़िवे कों भई है ।

रास्ते में अटक नदी पड़ी उसको पार करते समय नाव में कोई समस्या आ जाने से नाव डूबने लग गई, कर्णधार ने कहा कि अब हम लोगों के बचने की कोई सम्भावना नहीं हैं ।

बोल्यौ बड़ौ भ्राता अब कीजिये जतन कौन ?
भौन तिया भक्त कहि छोटे सुधि दई है॥

(भक्तिरसबोधिनी, कवित्त ५५८)

तब बड़े भाई मानसिह ने माधौसिह से कहा – 'भाई ! अब बचने का कौन-सा उपाय किया जाय?' माधौसिह बोले – अपने घर में हमारी स्त्री 'रत्नावती' बड़ी भक्त है, ऐसे विषम परिस्थिति में उसी का स्मरण करना चाहिए; क्योंकि –

भक्त भक्ति भगवंत गुरु, चतुर नाम वपु एक ।
इनके पद वंदन किये नाशैं विघ्न अनेक ॥

भक्त, भक्ति, भगवान् और गुरु इनमें से किसी का भी स्मरण किया जाय तो उससे अनेकों विघ्न टल जाते हैं ।

दोनों भाइयों ने रानी रत्नावती जी का स्मरण किया और ऐसा चमत्कार हुआ कि नाव संकट से बचकर किनारे पर लग गयी ।

अस्तु भक्तों में भाव मात्र रखने से अनन्त विपत्तियाँ टल जाती हैं और उनका अपराध करने से अनन्त संकट आते हैं फिर भगवान् भी उस भक्तापराधी की सहायता नहीं करते बल्कि वह फिर भगवान् की क्रोधाग्नि में जलता है, देवगुरु ब्रहस्पति जी ने इन्द्र से कहा है –

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ । निज अपराध रिसाहि न काऊ ॥
जो अपराधु भगत कर करई । राम रोष पावक सो जरई ॥
लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा । यह महिमा जानहि दुरबासा ॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड - २१९)

अथवा

भक्तिद्रोहकरा ये च ते सीदन्ति जगत्त्रये ।
दुर्वासा दुःखमापन्नः पुरा भक्तविनिन्दकः ॥

(श्रीमद्भागवत माहा. २/२०)

भक्तापराध अक्षम्य होता है । अम्बरीष जी का अपराध करने के कारण जब दुर्वासा जी को चक्र सुदर्शन जलाने लगा, तब वे सभी लोक-लोकान्तरों में भागते हुए वैकुण्ठ पहुँचे और भगवान् से अपनी रक्षा की गुहार लगाई तो भगवान् ने मना कर दिया–

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥

(श्रीमद्भागवत ९/४/६३)

दुर्वासा जी ! लोग मुझे स्वतन्त्र समझते हैं किन्तु मैं भी अधीन हूँ अपने भक्तों के । तुमने मेरे भक्त का अपराध किया है इसलिए मैं तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता ।

श्रीभगवद-रसिक जी ने भी लिखा है –

लात हनी भृगु हृदय में, हरि कीन्हों सन्मान ।
अम्बरीष अपराध ते भगवत मूँदे कान ।

भक्तापराधी चाहे भगवान् शंकर की ही तरह प्रभावशाली क्यों न हो, वह भी भक्तापराध से थोड़े ही समय में नष्ट हो जायेगा –

न विक्रिया विश्वसुहृत्सखस्य
साम्येन वीताभिमतेस्तवापि ।
महद्विमानात् स्वकृताद्धि माद्दङ्
नड्क्ष्यत्यदूरादपि शूलपाणिः ।

(श्रीमद्भागवत १०/१०/२५)

अतः स्वयं मीरा जी ने भी अपने कई पदों में साफ-साफ लिखा है कि मुझे सभी ने प्रताड़ित किया, मारने के प्रयत्न किये, जिनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

परम वैष्णवी श्री मीराबाई जी के अपराध का परिणाम सारे राजवंश को तो भोगना ही पड़ा, साथ ही वहाँ की निर्दोष प्रजा को भी भोगना पड़ा, चित्तौड़ का इतिहास स्वयं इसका गवाह है –

* **खानवा (भरतपुर) में १७ मार्च १५२७ में बाबर से मिली हार के कुछ दिन पश्चात् ही बसवा (दौसा) में राणा संग्राम सिह को उनके सामन्तों ने जहर देकर मारा ।**

(भरतपुर जिले की रूपवास तहसील में स्थित खानवा गाँव में आज भी बाबर और राणा सांगा के मध्य हुए युद्ध के चिन्ह मौजूद हैं, उस युद्ध में मिली पराजय के बाद उन्हें पीछे लौटना पड़ा और बसवा नामक स्थान में उनके सामन्तों ने उन्हें जहर दे दिया, इस घटना को प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड ने भी 'राजस्थान का इतिहास' प्रथम भाग नामक ग्रन्थ में पृष्ठ सं. २५९ पर उल्लिखित किया है ।)

आखिर ऐसा हुआ क्यों ? तो इसका एक ही उत्तर है कि उन्होंने भी मीराबाई जैसी परम कृष्ण-भक्ता को विष देकर छल से मारने का असफल प्रयत्न किया था। उसका फल उन्हें मिला और विष से ही उनकी मृत्यु हुई ।

* **राणा सांगा की मृत्यु के ७-८ वर्ष पश्चात् गुजरात के शासक बहादुर शाह ने जब १५३५ में चित्तौड़ पर आक्रमण किया तो उस समय राजमाता कर्मवती (कर्णावती) (राणा सांगा की पत्नी, विक्रमादित्य और उदयसिह की माँ) को अन्य सौतों एवं १३,००० क्षत्राणियों के साथ जौहर की अग्नि में जलना पड़ा। क्योंकि मीरा जी को सताने में इनका भी हाथ था, कर्मवती के राजमाता बनने के समय ही विक्रम ने मीरा जी को बहुत यातनाएँ दीं, उसका फल इन सबको मिला ।**

* **इस जौहर के कुछ समय पश्चात् ही बनवीर ने वर्तमान राणा विक्रमादित्य को भी मार डाला ।**

ये सब घटनाएँ इस बात की साक्ष्य हैं कि मीरा जैसी भक्ता को जो इन लोगों ने सताया था यह उसी का परिणाम है ।

यदि कोई शंका करे कि अपराध तो राजपरिवार के सदस्यों ने किया, सारी प्रजा को इसका परिणाम क्यों भोगना पड़ा? तो इसका समाधान है कि –

महान्तेर अपमान ये देश-ग्रामे हय ।
एक जनार दोषे सब ग्राम उजाड़य ॥

(चैतन्यचरितामृतम्)

अथवा

'जो मेरे भक्तनि दुःख देवे कुल समेत तेहि खोऊँ ।'

यही बात लङ्का में स्थित सुवेल पर्वत पर चढ़ते समय भगवान् श्रीराम ने सुग्रीव, विभीषणादि से भी कही है –

तस्मिन् मे वर्तते रोषः कीर्तिते राक्षसाधमे ।
यस्यापराधान्नीचस्य वधं द्रक्ष्यामि रक्षसाम् ॥
एको हि कुरुते पापं कालपाशवशं गतः ।
नीचेनात्मापचारेण कुलं तेन विनश्यति ॥

(वा.रा.युद्ध. ३८/७)

उस राक्षसाधम रावण का नाम लेते ही मुझे क्रोध आने लगता है, केवल उसी अधम निशाचर रावण के अपराध से मैं समस्त राक्षसों का संहार करूँगा। क्योंकि 'काल के पाश में बंधा हुआ एक ही पुरुष पापाचार करता है, किन्तु उस नीच के अपने ही दोष से सारा कुल नष्ट हो जाता है ।

अगर राणा सांगा मीराबाई का अपराध न करते वरन् उनकी सेवा करते, उनकी भक्ति का आदर करते तो वे न तो बाबर से परास्त होते और न ही इस प्रकार विष से उनकी मृत्यु होती । इसी तरह उनकी स्त्रियों ने मीरा को प्रताड़ित किया जिसके फलस्वरूप जौहर कुण्ड की अग्नि में उन सबको जलना पड़ा । अगर उन्होंने मीराबाई जी में भाव रखा होता, उनकी भक्ति का सम्मान किया होता तो उन्हें भी जौहर न करना पड़ता । जो भी विपत्तियाँ आईं ये सब भक्तापराध के ही कारण आईं । चित्तौड़ का विध्वंस भी मीरा जी के अपराध के कारण ही हुआ। भक्तापराधी भगवान् की कोपाग्नि से बच नहीं सकता है, चाहे वो हिरण्यकशिपु और रावण जैसा बलवान ही क्यों न हो । भगवान् सब सह जाते हैं किन्तु भक्तापराध सहन नहीं करते हैं । जब हिरण्यकशिपु का अत्याचार बढ़ा तो सभी देवता भगवान् के पास गए, भगवान् ने कहा कि देवताओ ! तुम चिन्ता मत करो –

यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु।
धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति ॥

(श्रीमद्भागवत ७/४/२७)

'जब कोई व्यक्ति देवों से, वेदों से, गायों से, ब्राह्मणों से, साधुओं से, धर्म से और मुझसे द्वेष करता है तो वह शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है।'

तब वे बोले – प्रभो ! इस असुर ने तो सभी से द्वेष किया, जिनका आपने नाम गिनाया फिर इसका नाश क्यों नहीं हो रहा है ?

तब पुनः भगवान् बोले –

निर्वैराय प्रशान्ताय स्वसुताय महात्मने ।
प्रह्लादाय यदा द्वह्योद्धनिष्येऽपि वरोर्जितम् ॥

(श्रीमद्भागवत ७/४/२८)

तुम सत्य कह रहे हो किन्तु इसने जो ३६,००० वर्ष तक घोर तप किया था उसके कारण यह इतने अपराध करने पर भी सुरक्षित है किन्तु

घबड़ाओ नहीं, जब यह निर्वैर, प्रशान्त अपने पुत्र भक्त प्रह्लाद से द्वेष करेगा, तब मैं उसे अवश्य मार डालूँगा, चाहे भले ही उसे कैसे भी वर प्राप्त क्यों न हों।

इसलिए ये जो चित्तौड़ में जितनी भी दुर्घटनाएँ घटीं, राणा सांगा की पराजय, १३००० क्षत्राणियों का जौहर, चित्तौड़ में अकाल आदि कई तरह के संकटों का आना, ये सब मीराबाई के अपराध के कारण हुआ ।

यही अपराध आज पुनः होने जा रहा है चित्तौड़ में बनने वाले श्रीरैदास जी के पेनोरमा का विरोध करके; इसका परिणाम भी अच्छा नहीं होगा । इस अपराध का मूल कारण है कि आधुनिक काल के तथाकथित विद्वानों और प्रवचनकर्ताओं के अंतःकरण में भेदबुद्धि की ऐसी कालिमा उभर आई है जो समाज को उत्तरोतर ऐसे अँधेरे कुएं में धकेल रही है जिससे वे कभी बाहर नहीं निकल पायेंगे ।

जो लोग श्रीरैदास जी का चित्तौड़ से कोई सम्बन्ध नहीं मानते हैं उन्हें महापुरुषों की वाणियों का गंभीरता से अध्ययन करना चाहिए। भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास जी ने वर्णन किया है –

बसत चित्तौर मांझ रानी एक झाली नाम,
नाम बिन कान खाली आनि शिष्य भई है ।
संग हुते बिप्र सुनि छिप्र तन आंच लागी,
भागी मति नृप आगे भीर सब गई है ॥
वैसेहि सिहासन पै आनि कै विराजै प्रभु,
पढ़े वेद वानी पै न आये यह नई है ।
पतितपावन नाम कीजिये प्रगट आजु,
गायो पद गोद आइ बैठे भक्ति लई है ॥

('भक्तिरसबोधिनी' कवित्त २६६)

जब चितौड़ की महारानी झाली ने रैदास जी से गुरुदीक्षा ग्रहण कर ली तो दुर्विषह क्रोध के कारण ब्राह्मणों ने राजा से उनकी शिकायत की कि यह रैदास तो चमार है, इसको दीक्षा देने का कोई अधिकार नहीं है, इसने अनधिकार चेष्टा की है अतः आप न्याय करें और इसे दण्ड दें । ब्राह्मणों की शिकायत सुनकर राजा ने दरबार में श्री रैदास जी को बुलवाया और दरबार के बीच में ही एक भगवद्-विग्रह को पधराकर रैदास जी से कहा कि आप और ये ब्राह्मणगण भगवान् का आवाहन कीजिए, आहूत किए जाने पर जिसके पास भगवान् चले जायेंगे वही उनकी सेवा करने का अधिकारी होगा और वही समाज में लोगों को मंत्र दीक्षा देने के योग्य समझा जाएगा । राजा की घोषणा सुनकर ब्राह्मणों ने विधि विधान के सहित वैदिक मन्त्रों के पाठ द्वारा भगवान् का आवाहन किया परन्तु भगवद्-विग्रह अपने स्थान से हिला तक नहीं। अनंतर जब श्री रैदास जी ने विनय और आर्त भाव से पद गाया तो भगवान् श्री रैदास जी की गोद में आकर विराजमान हो गए । अन्य लोग तो इस घटना को देखकर अत्यंत प्रभावित हुए और उन्होंने भगवान् की भक्ति करना स्वीकार कर लिया किन्तु दुर्विषह द्वेष से पीड़ित द्वेषाभिमानियों ने रैदास जी को स्वीकार नहीं किया ।

गई घर झाली पुनि बोलिकै पठाये,
अहो जैसे प्रतिपाली अब तैसे प्रतिपारियै ।
आपुहू पधारे उन बहु धन पट वारे,
विप्र सुनि पाँव धारे सीधो दै निवारियै ॥
करिकैं रसोई द्विज भोजन करन बैठे,
द्वै-द्वै मधि एक यों रैदास को निहारियै ।
देखि भई आखें दीन भाषैं <u>सिखलाखैं</u>,
भये स्वर्ण को जनेऊ काढ्यो त्वचा कीनी न्यारियै ॥

('भक्तिरसबोधिनी' कवित्त २६७)

जब झाली रानी काशी से चित्तौड़ चली गयीं तो उन्होंने रैदास जी को प्रार्थना करके निमंत्रण भेजा कि जिस प्रकार आपने काशी में मंत्र दीक्षा प्रदान कर मेरे ऊपर अनुग्रह किया, उसी प्रकार एक बार चित्तौड़ में मेरे महल में पधार कर आप मेरे ऊपर पुनः कृपा कीजिये । झाली रानी के निमंत्रण पर संत रैदास जी चितौड़ पधारे। वहाँ रानी ने उनका बहुत बड़ा स्वागत किया और साधुओं तथा ब्राह्मणों को भंडारे में भोजन के लिए आमंत्रित किया । चित्तौड़ के ब्राह्मणों ने भंडारे में भोजन करने से यह कहकर इन्कार कर दिया कि रैदास शूद्र है, इस भंडारे में शूद्र की प्रधानता है अतः हमलोग यहाँ भोजन नहीं करेंगे । हमें अलग से सीधा सामग्री दे दी जाय, हम अपना भोजन स्वयं बनायेंगे । ब्राह्मणों को अलग से सीधा दे दिया गया । जब वे स्वयं अपना भोजन बनाकर खाने के लिए बैठे तो उन्हें पंक्ति में दो-दो ब्राह्मणों के मध्य एक रैदास बैठे दिखाई दिए । इसी प्रकार श्री रैदास जी ने अपने शरीर की त्वचा को चीर कर सोने के यज्ञोपवीत का भी सबको दर्शन कराया । इस विलक्षण चमत्कार से भी लाखों लोग उनके नतमस्तक होकर शिष्य बन गए ।

क्या ये रैदास जी का चित्तौड़ से सम्बन्ध नहीं रहा ?

चित्तौड़ की महारानी झाली उनकी शिष्या बनी ।

'देखि भई आखें दीन भाषैं <u>सिखलाखैं</u>' वहाँ के सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण उनके शिष्य बन गए ।

मीराबाई ने भी उनका शिष्यत्व ग्रहण किया ।

इन सब प्रमाणों को देखकर भी दुर्विषह क्रोध वाले द्वेषी जनों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है क्योंकि वे दुर्विषह क्रोध में जलते रहते हैं । दुर्विषह क्रोध क्या है, इसे समझिये । यह समाज में तेजी से फैलता जा रहा है ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भागवत में उद्धव जी के प्रति इसका

विस्तार से वर्णन किया है । इसको समझना आवश्यक है तभी हम चहुमुखी व्यापक इस दुर्विषह क्रोध की ज्वाला से स्वयं को और समाज को बचा सकेंगे । सर्वप्रथम तो यह जानना आवश्यक है कि दुर्विषह क्रोध उत्पन्न कैसे होता है ?

कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्तते ।
तमसा ग्रस्यते पुंसश्चेतना व्यापिनी द्रुतम् ॥

(श्रीमद्भागवत ११/२१/२०)

कलि के उदय होने के पश्चात् दुर्विषह क्रोध उत्पन्न होता है । यह दुर्विषह क्रोध क्या है, ये है ईर्ष्या अर्थात् सह न सकना । किसी की थोड़ी भी प्रशंसा न सह सकना दुर्विषह क्रोध है । यह क्या करता है ? यह तम पैदा कर देता है । तम अर्थात ऐसा अन्धकार जो मनुष्य की चेतना को ही ग्रसित कर लेता है । वर्तमान में इसका दुष्प्रभाव सभी सम्प्रदायों में तेजी से फैलता जा रहा है । इसके प्रभाव से मनुष्य के मन में एक प्रकार की चिढ़ पैदा हो जाती है और सत्य प्रामाणिक सिद्धान्तों से ही द्वेष करने लगते हैं । जबकि द्वेष तो मनुष्य को अपने अवगुणों से करना चाहिए । भक्ति शास्त्रों के प्रति द्वेष होना तो मनुष्य के सर्वनाश का सूचक है । किसी वैष्णव आचार्य का नाम ले लिया जैसे रैदास जी का नाम ले लिया, मीरा जी का नाम ले लिया, किसी भक्ति ग्रन्थ का नाम ले लिया तो चिढ़ पैदा हो जाएगी । इसी को कहते हैं दुर्विषह क्रोध । इसी दुर्विषह क्रोध के कारण श्रीरैदास जी की चर्चा होने पर कि वह मीरा जी के गुरु थे तो वर्तमान काल के जातिवादी, प्रान्तीयवादी तथाकथित विद्वान् और इतिहासकार चिढ़ जाते हैं । दुर्विषह क्रोध से ऐसा तम उत्पन्न होता है कि उस मनुष्य की आध्यात्मिक मृत्यु हो जाती है । यह तम क्या करता है, हमारे शरीर में जो चेतना व्याप्त है उसका भक्षण कर लेता है । चेतना भक्षण का अभिप्राय ये है कि ऐसे व्यक्ति को यदि साक्षात् भगवान् भी आकर समझाएगें तो वह उनकी शिक्षा को ग्रहण नहीं कर सकेगा । जिस प्रकार हनुमान जी रावण को समझाने गए और भगवान् कृष्ण दुर्योधन को समझाने गए तो उनके उपदेशों का इन लोगों पर विपरीत प्रभाव हुआ ।

वर्तमानकाल में हम जैसे संकीर्ण लेखक/उपदेष्टा ऐसा उपदेश करते हैं कि सारा समाज दुरत्यय अन्धकार में पहुँच जाता है । श्रीमद्भागवत में राजा सत्यव्रत जी ने भगवान् के समक्ष इस कटु सत्य का उद् घोष किया है ।

अचक्षुरन्धस्य यथाग्रणीः कृतस्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः ।
त्वमर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणो वृतो गुरुर्नः स्वगति बुभुत्सताम् ॥

(श्रीमद्भागवत ८/२४/५०)

संसार में प्रायः अन्धा अन्धे का गुरु बन जाता है । कोई अन्धा जा रहा था, उसने कहा कि कोई मुझे रास्ता बता दे, इतने में उसे एक दूसरा अन्धा मिला। उसके चेहरे पर आँख का चिन्ह भी नहीं था लेकिन वह दूसरे अंधे से बोला कि मैं तुम्हे रास्ता बताता हूँ, मेरे पीछे चले आओ । अब उसका अनुगमन करने से पथ प्रदर्शक नेत्रहीन तो गहरे गड्ढे में गिरा ही अपितु उसके पीछे चलने वाला भी गहरी खाई में जा गिरा । संसार में अधिकांशतया ऐसा ही होता है कि हम जैसे विवेकहीन लोग पथ प्रदर्शक गुरु बन जाते हैं, उपदेष्टा बन जाते हैं जो स्वयं मोहान्धकार में पड़े हैं और संसार के अज्ञानी मनुष्यों का मार्गदर्शन करके उन्हें भी अज्ञान के गहन अन्धकार में पटक देते हैं । समाज में अधिकतर विवेकहीन संकीर्ण बुद्धि के लोग उपदेष्टा, विद्वान, इतिहासकार आदि बनकर घूम रहे हैं, जो अपनी शिक्षाओं से समाज को दिग्भ्रमित किया करते हैं जैसे कि रैदास जी मीरा जी के गुरु नहीं थे अथवा झूठे तर्क प्रस्तुत करते हैं कि काल की गणना के हिसाब से रैदास जी और मीरा जी के समय में अत्यधिक अंतर है, इसलिए वे मीरा जी के गुरु नहीं थे अथवा साम्प्रदायिक, जातीय और प्रांतीय वैमनस्य का प्रसार करते रहते हैं । इसलिए इन लोगों से सावधान रहनी की बहुत आवश्यकता है । अन्यथा ऐसे संकीर्ण-भेदबुद्धि युक्त विचारों से हम ऐसे दुरत्यय अन्धकार में पहुँच जायेंगे कि जहाँ से निकलना असम्भव है ।

यद्यपि आज का समाज अनेक संकीर्णताओं में फँसकर कलियुग में अवतरित गोपबाला मीरा के पदों को गाने में अपनी कथित अनन्यता का तिरस्कार समझता है परन्तु यह किसी परम वैष्णवी कृष्णप्रिया व आराधिका का अपराध है । मीराबाई के पावन चरित्र को चूँकि बाबा महाराज नित्य गाते हैं, अतः यह आवश्यक समझा गया कि उनके प्रियतम प्रेम को भक्तों के आस्वादनार्थ सार्वजनिक किया जाय और इसी दृष्टि से 'मीरा के प्रभु गिरिधर नागर' नामक ग्रन्थ का प्रकाशन किया गया ।

श्री बाबा महाराज ने अपने संध्याकालीन प्रवचन में गोस्वामी नाभाजी कृत भक्तमाल के आधार पर मीराबाई जी के चरित्र पर जो सारगर्भित कथा कही थी, प्रस्तुत पुस्तक में पूज्यश्री के उन्हीं अमृतमय विचारों का संकलन किया गया है । भक्तिमती मीरा जी के सन्दर्भ में महाराज श्री द्वारा उपदिष्ट कथामृत को आप इस वेवसाइट के द्वारा सहज ही श्रवण कर सकते हैं –

(Website : http://maanmandir.org/bhakta-charitra-meera-ji/)

'भक्ति' ज्ञानकर्मादि से अनावृत है, इसलिए भक्तिमार्ग में कर्म का बंधन नहीं मानना चाहिए, विशेषकर कृष्णभक्ति में ।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण उत्तरकाण्ड छिहत्तरवें सर्ग में कथा आती है परम तपस्वी शम्बूक के वध की । उसका वध स्वयं श्रीरामजी ने किया था जबकि वह तपोरत् था न कि पापरत् । वध करने का कारण सिर्फ इतना था कि वह शूद्रकुलोत्पन्न होकर तप कर रहा था ।

कथा इस प्रकार है – श्रीरामचन्द्र जी के शासनकाल में एक वृद्ध ब्राह्मण के छोटे-से बालक की मृत्यु हो गयी । वह ब्राह्मण बालक के मृत देह को राजद्वार पर लाया और बालक की मृत्यु का दोषी राजा रामचन्द्र जी को ठहराने लगा । उसका कहना था कि 'राजा के पाप से ही राज्य में बालकों की अकाल मृत्यु होने लगी है ।' इस घटना से रामजी बड़े दुःखी हुए और उन्होंने तुरन्त समस्त मन्त्रियों की सभा बुलाई। भाइयों सहित ऋषियों को भी दरबार में आमन्त्रित किया । श्रीवशिष्ठ जी के साथ मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, काश्यप, कात्यायन, जाबालि, गौतम तथा नारद जी दरबार में उपस्थित हुए । यथायोग्य सत्कारोपरांत राम जी ने वृद्ध ब्राह्मण के बालक की अकाल मृत्यु की बात सबके समक्ष रक्खी ।

तब नारद जी बोले कि बालक की मृत्यु का कारण मैं बताता हूँ –

त्रिभ्यो युगेभ्यस्त्रीन् वर्णान् धर्मश्च परिनिष्ठितः ।
न शूद्रो लभते धर्मं युगतस्तु नरर्षभ ॥
अधर्मः परमो राजन् द्वापरे शूद्रजन्मनः ।
स वै विषयपर्यन्ते तव राजन् महातपाः ॥
अद्य तप्यति दुर्बुद्धिस्तेन बालवधो ह्ययम् ।

(वा.रा.उत्तर. ७६/२६,२८)

'तीन युगों में तीन वर्णों का ही आश्रय लेकर तपस्यारूपी धर्म प्रतिष्ठित होता है; किन्तु शूद्र को इन तीनों ही युगों में तपरूपी धर्म का अधिकार प्राप्त नहीं है । द्वापर में भी शूद्र का तप में प्रवृत्त होना अधर्म माना गया है फिर त्रेता के लिए तो कहना ही क्या ? महाराज! निश्चित ही कोई शूद्र आपके राज्य में कहीं महान तप का आश्रय ले तपस्या कर रहा है, उसी के कारण इस बालक की मृत्यु हुई है ।'

नारद जी की बात सुनकर उसी समय श्रीराम जी पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर शस्त्र लेकर उसकी खोज में चल दिए । शैवल पर्वत के उत्तरभाग में उन्हें सरोवर किनारे एक तपस्वी दिखाई पड़ा । श्रीराम जी उसके पास गए और उससे पूछा –

यमाश्रित्य तपस्तप्तं श्रोतुमिच्छामि तापस ।
ब्राह्मणो वासि भद्रं ते क्षत्रियो वासि दुर्जयः ।
वैश्यस्तृतीयो वर्णो वा शूद्रो वा सत्यवाग् भव ॥

(वा.रा.उत्तर.७५/१८)

'हे तापस ! तुम जिस वस्तु की आकाँक्षा से तप कर रहे हो, उसे मैं जानना चाहता हूँ । इसके अलावा यह भी जानना चाहता हूँ कि तुम ब्राह्मण हो या दुर्जय क्षत्रिय? वैश्य हो अथवा शूद्र ! सही-सही मुझे बताओ ।'

तब वह तथाकथित तपस्वी बोला –

शूद्रयोन्यां प्रजातोऽस्मि तप उग्रं समास्थितः ।
देवत्वं प्रार्थये राम सशरीरो महायशः ॥

(वा.रा.उत्तर. ७६/२)

'हे राम! मैं शूद्रयोनि में उत्पन्न हूँ और सदेह स्वर्गलोक जाकर देवत्व प्राप्त करना चाहता हूँ । इसीलिये ऐसा उग्र तप कर रहा हूँ ।'

भाषतस्तस्य शूद्रस्य खड्गं सुरुचिरप्रभम् ।
निष्कृष्य कोशाद् विमलं शिरश्चिच्छेद राघवः ॥

(वा.रा.उत्तर. ७६/४)

उसके इतना कहते ही भगवान् राम ने म्यान से चमचमाती तलवार निकाल ली और उसका सिर काट दिया ।

अस्तु भगवान् राम ने ऋषियों के कहने पर वैदिक मर्यादा की रक्षा के लिए शम्बूक का वध किया क्योंकि रामराज्य में –

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग ।
चलहि सदा पावहि सुखहि नहि भय सोक न रोग ॥

(रा.च.मा.उत्तर. २०)

सभी लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में तत्पर रहते थे और सदा वेद मार्ग पर चलते और सुख पाते थे ।

किन्तु शम्बूक स्वर्गप्राप्त्यर्थ वैदिक मर्यादा का अतिक्रमण करके तपोरत् था इसीलिये भगवान् ने उसका वध किया ।

इसके विपरीत उदाहरण है कि शबरी जी का; वह भी हीन जात्योत्पन्न थीं परन्तु उन्हीं श्रीराम जी ने शबरी जी के लिए सारी वैदिक मर्यादाओं को तोड़ दिया, दण्डकारण्य के ऋषियों को छोड़ दिया –

मिलि मुनिबृंद फिरत दंडक बन, सो चरचौ न चलाई ।
बारहि बार गीध सबरी की, बरनत प्रीति सुहाई ॥

किन्तु शबरी का त्याग नहीं किया क्योंकि शबरी और शम्बूक में यही अन्तर था शबरी जी परम भक्ता थीं और शम्बूक तपस्वी अवश्य था किन्तु भक्त नहीं था अगर वह भक्त होता तो प्रभु श्रीराम जी की भक्ति छोड़कर स्वर्ग में देवत्व की प्राप्ति के लिए तप नहीं करता । स्वर्ग का राज्य तो छोटी चीज है भक्त तो रसातल, ब्रह्मलोक तक के आधिपत्य से भी निरपेक्ष रहता है–

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ॥

(भा. ६/११/२५)

अतः भक्ति में वर्णाश्रमादि के धर्म-कर्मों का बंधन नहीं रहता है । यहाँ भागवत धर्म में तो –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(गी. १८/६६)

अथवा

जाकी है उपासना ताही की वासना,
ताही कौ नाम रूप लीला गुन गाइयै ।
यहै अनन्य परम धर्म परिपाटी,
बृंदावन बसि अनत न जाइयै ॥

यद्यपि श्रीराम जी मर्यादा पुरुषोत्तम बोले गए किन्तु **'भक्तिप्रियो माधवः'** भक्ति के कारण उन्होंने एक भीलनी के जूठे बेर खाये ।

झूठे फल शबरी के खाये, ऋषि स्थान विसराये ॥

(श्रीनामदेव जी)

सबसों ऊँची प्रेम सगाई ।
जूठे फल शबरी के खाये, बहुविधि स्वाद बताई ॥

(श्रीसूरदास जी)

भीलणी का बेर सुदामा का तंडुल, भर-भर मूंठि बुकंद ।

(श्रीमीराबाई जी)

कुछ भावहीन लोग इस पर भी शंका करते हैं और तर्क देते हैं कि वे शबरी के जूठे बेर नहीं थे अपितु शबरी उस वृक्ष के बेर चखकर लाती थी जिसके मीठे बेर हैं । जबकि शास्त्रों में व संतों ने स्पष्ट कहा है । श्रीपद्मपुराण में कहा गया –

फलमूलं समादाय परीक्ष्य परिभक्ष्य च ।
पश्चान्निवेदयामास राघवाय महात्मने ॥

'शबरी जी फलों को लाकर, अच्छी प्रकार चखकर उनका परीक्षण करती थीं और उनमें जो मीठे फल थे, वही उन्होंने श्रीराम जी को निवेदित किये।'

प्रेमपत्तन ग्रन्थ में भी लिखा है –

प्रेम्णावशिष्टमुच्छिष्टं भुक्त्वा फ़ल चतुष्टयम् ।
कृता रामेण भक्तानां शबरी कबरी मणिः ॥

'प्रेम से अवशिष्ट जूठे फलों को खाकर के श्रीरघुनाथ जी ने शबरी को भक्तों का चूड़ामणि बना दिया ।'

श्रीभक्तिरसबोधिनी टीका में श्रीप्रियादास जी भी स्पष्ट लिखते हैं –

लावै वन बेर लागी राम की अवसेर
फल चाखै धरि राखै फिरि मीठे उन जोग हैं ।

अतएव संतों ने लिखा है कि भक्ति पंथ में अधर्म भी धर्म के रूप में परिणत हो जाता है ।

'यत्राधर्म एव धर्मः स्थापितः ।'

(प्रेमपत्तनम्)

भगवान् का अवतार केवल भक्तों के लिए होता है –

एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानंद पर धामा ॥
ब्यापक बिस्वरूप भगवाना । तेहि धरि देह चरित कृत नाना ॥
सो केवल भगतन हित लागी । परम कृपाल प्रनत अनुरागी ॥

(रा.च.मा.बाल. १३)

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं । कृपासिधु जन हित तनु धरहीं ।

(रा.च.मा.बाल. १२२)

चिदानंदमय देह तुम्हारी । बिगत बिकार जान अधिकारी ॥
नर तनु धरेहु संत सुर काजा । कहहु करहु जस प्राकृत राजा ॥

(रा.च.मा.अयो. १२७)

तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें । धरउँ देह नहि आन निहोरें ॥

(रा.च.मा.सुन्दर. ४८)

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप ।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ७२)

इसलिए भगवान् भी भक्ति विरुद्ध किसी भी मर्यादा को नहीं मानते हैं । श्रीमद्भागवत के आदि में परमहंस शौनकादि ऋषियों ने कहा है –

कृतवान किल वीर्याणि सह रामेण केशव ।
<u>अतिमर्त्यानि</u> भगवान् गूढः कपटमानुषः ॥

(श्रीमद्भागवत १/१/२०)

इस श्लोक में 'अतिमर्त्य' शब्द का अर्थ आचार्यों ने किया है –

'अतिमर्त्यानि नराकृतिपरब्रह्मत्वात् मर्त्योऽपि मर्त्यानतिक्रान्तानि ।'

(श्रीविश्वनाथचक्रवर्तिकृता सारार्थदर्शिनी)

अर्थात् भगवान् ने ऐसी लीलायें की जो मनुष्य लोक के बन्धनों से अतीत थीं ।

भगवान् की इन्हीं अतिमर्त्य लीलाओं में अहैतुकी व अप्रतिहत प्रीति होना ही मनुष्यों का एकमात्र परम धर्म है –

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति ॥

(श्रीमद्भागवत १/२/६)

यदि प्रभु की इन मंगलमयी परम पावन लीलाओं में रति नहीं पैदा हुई तो चाहे कितना भी धर्म का अनुष्ठान कर लो, वह सब धर्म श्रममात्र हो जाता है –

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।
नोत्पादयेद्यदि रति श्रम एव हि केवलम् ॥

(श्रीमद्भागवत १/२/८)

फिर तो मथुरा के ब्राह्मणों की तरह पश्चाताप ही हाथ लगेगा ।

धिग् जन्म नस्त्रिवृद् विद्यां धिग् व्रतं धिग् बहुज्ञताम् ।
धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥

(श्रीमद्भागवत १०/२३/३९)

'हाय ! हम भगवान् श्रीकृष्ण से विमुख हैं अतः हमारे ऊँचे कुल में जन्म, गायत्री दीक्षा, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, विद्या, व्रत, बहुज्ञता, कर्मकाण्ड की निपुणता को धिक्कार है ।'

श्रीसूरदास जी ने इस चरित्र का बड़ा अच्छा वर्णन किया है –

हम सबहि मन्द भाग भगवानसों विमुख भये धन्य वे नारि गोविन्द पूजे ।
मूँदि रहे नैन हम सबै उलूक ज्यों भानु भगवान आये न सूझे ॥
धिक जन्मजाति कुलक्रिया स्वाहा स्वधा जोग जज्ञ जप सकल धिक हमारे ।
ज्ञान विज्ञान धर्म कछु कर्म नाहीं ईश पद विमुख आरम्भ हमारे ॥
शौच आचारु, गुरुकुलहि सेवा कछू कुटिल करकस हिये बुद्धि दीनी ।
देखौ इन तियन कौ भाग या जगत में सच्चिदानन्द के रंग भीनी ॥

आगे ब्राह्मण कहते हैं –

अहो पश्यत नारीणामपि कृष्णे जगद्गुरौ ।
दुरन्तभावं योऽविध्यन्मृत्युपाशान् गृहाभिधान् ॥
नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि ।
न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः ॥
अथापि ह्युत्तमश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ।
भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि ॥

(श्रीमद्भागवत १०/२३/४१-४३)

'कितने आश्चर्य की बात है ? देखो तो सही – यद्यपि ये स्त्रियाँ हैं तथापि जगद्गुरु भगवान श्रीकृष्ण में इनका कितना अगाध प्रेम है, अखण्ड अनुराग है । उसी से इन्होंने गृहस्थी की वह बहुत बड़ी फाँसी भी काट डाली जो मृत्यु के साथ भी नहीं कटती । इनके न तो द्विजाति के योग्य संस्कार हुए हैं और न तो इन्होंने गुरुकुल में ही निवास किया है, न इन्होंने तपस्या की है और न तो आत्मा के सम्बन्ध में ही कुछ विवेक विचार किया है । कहाँ तक कहा जाय, इनमें न तो पूरी पवित्रता है और न तो शुभ कर्म ही । फिर भी समस्त योगेश्वरों के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में दृढ़ प्रेम है और हमने अपने संस्कार किये हैं, गुरुकुल में निवास किया है, तपस्या की है, आत्मानुसंधान किया है, पवित्रता का निर्वाह किया है तथा अच्छे-अच्छे कर्म किये हैं; फिर भी भगवान् के चरणों में हमारा प्रेम नहीं है ।'

वैष्णव धर्म को सम्यक्प्रकारेण न समझने वाले कुछ लोग लौकिक-वैदिक धर्मों की दुहाई देकर भयोत्पन्न कराते हैं कि धर्म पर नहीं चलोगे तो पाप लगेगा, तुम्हारा पतन हो जाएगा, नरक की प्राप्ति होगी किन्तु श्रीमद्भागवत में नारद जी ने वेदव्यास जी के समक्ष यह श्लोक कहा है–

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेर्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि ।
यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किं को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः ॥

(श्रीमद्भागवत १/५/१७)

स्वधर्म का परित्याग करके जो व्यक्ति भागवत धर्म के पालन में तत्पर है अर्थात् भगवान् के श्रीचरणकमलों के भजन-सेवन में तत्पर है यदि कदाचित् उसका पतन भी हो जाता है तब भी उसका कोई अमंगल नहीं होता है परन्तु जो स्वधर्म पालन में तत्पर हैं उन्हें क्या प्राप्ति होगी?

बड़े-बड़े विद्वानों ने भी यही निरूपण किया है कि श्रीकृष्ण की लीलाओं का गुणगान करना ही मनुष्य की तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय, ज्ञान और दान का एकमात्र फल है –

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः ।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥

(श्रीमद्भागवत १/५/२२)

मायातीत लोग भी यही करते हैं । श्रीसूतजी के वचन –

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ॥

(श्रीमद्भागवत १/७/१०)

'जो सदा-सर्वदा आत्मा में ही रमण करने वाले ज्ञानी लोग हैं, वे भी भगवान् की अहैतुकी भक्ति किया करते हैं क्योंकि भगवान् के गुण ही ऐसे मधुर और चित्ताकर्षक हैं ।'

श्रीशुकदेव जी के वचन –

प्रायेण मुनयो राजन् निवृत्ता विधिषेधतः ।
नैर्गुण्यस्था रमन्ते स्म गुणानुकथने हरेः ॥

(श्रीमद्भागवत २/१/७)

'परीक्षित ! जो निर्गुण स्वरूप में स्थित हैं एवं विधि-निषेध की मर्यादा को लाँघ चुके हैं, वे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी प्रायः भगवान् के अनन्त कल्याणमय गुणगणों के वर्णन में रमे रहते हैं ।'

आगे शुकदेव जी स्वयं अपनी स्थिति के विषय में बता रहे हैं –

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया ।
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान् ॥

(श्रीमद्भागवत २/१/९)

'हे राजर्षे ! मेरी निर्गुणस्वरूप में परिनिष्ठा है किन्तु फिर भी भगवान् श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं ने बलात् मेरे हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लिया । इसीलिये मुझे इस भागवतपुराण का अध्ययन करना पड़ा ।'

भगवान् की लीलाओं में शंका करने वाला तो साधारण भक्त भी नहीं है फिर कृष्ण भक्त होना तो असम्भव है; क्योंकि गोपियों ने कहा है कि पुराण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण बलराम जी एवं ग्वाल-बालों के साथ

तरह-तरह की गँवारू क्रीड़ाएँ करते हैं । ये वही श्रीकृष्ण हैं ब्रह्मा, शंकर और लक्ष्मी जी जिनके चरणों की सेवा करते हैं ।

यही है कृष्णलीला ।

पुण्या बत व्रजभुवो यदयं नृलिङ्ग
गूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः ।
गाः पालयन् सहबलः क्वणयंश्च वेणुं
विक्रीडयाञ्चति गिरित्नरमार्चिताङ्घ्रिः ॥

(श्रीमद्भागवत १०/४४/१३)

श्रीउद्धव जी ने भी यही कहा है –

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः ।
वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥

(श्रीमद्भागवत १०/४७/५८)

इस पृथ्वी पर इन गाँव की गँवारिन गोपियों का ही शरीर धारण करना श्रेष्ठ एवं सफल है क्योंकि इनका सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति प्रेममय दिव्य जो भाव है, इनके उस भाव को बड़े-बड़े मुक्तपुरुष, हम जैसे भक्तजन और सैकड़ों ब्रह्मा भी नहीं पा सकते हैं । जिन्हें भगवान् श्रीकृष्ण की लीला-कथा के रस का चसका लग गया है, उन्हें कुलीनता की, द्विजातिसमुचित संस्कार की और बड़े-बड़े यज्ञ-यागों में दीक्षित होने की क्या आवश्यकता है ? अथवा यदि भगवान् की कथा का रस नहीं मिला, उसमें रुचि नहीं हुई तो अनेक कल्पों तक बार-बार ब्रह्मा बनने से क्या लाभ ?

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः
कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः ।
नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षा-
च्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥

(श्रीमद्भागवत १०/४७/५९)

कहाँ ये वनचरी आचार, ज्ञान और जाति से हीन गाँव की गँवार ग्वालिनें और कहाँ सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्ण में यह अनन्य परम प्रेम ! धन्य है ! इससे यह सिद्ध है कि कोई कैसी भी स्थिति में भगवान् से प्रेम करे, उस पर प्रभु अवश्य कृपा करते हैं । जिस प्रकार अनजान में भी अमृत पी लेने पर अमरत्व की प्राप्ति हो जाती है ।

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः ।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद् व्रजवल्लवीनाम् ॥

(श्रीमद्भागवत १०/४७/६०)

भगवान् श्रीकृष्ण ने रासोत्सव के समय इन व्रजांगनाओं के गले में बाँह डाल-डालकर इनके मनोरथ पूर्ण किये । इन्हें जो सौभाग्य प्राप्त हुआ वह तो नित्यसंगिनी वक्षःस्थल पर विराजमान लक्ष्मी जी को भी नहीं प्राप्त हुआ फिर इतर देवांगनाओं अथवा स्त्रियों की तो बात ही क्या करें ?

मानवी बुद्धि भगवान् की इन सब लीलाओं को समझ ही नहीं सकती है क्योंकि जब परीक्षित जी शुकदेव जी से प्रश्न कर बैठे –

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च ।
अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥
स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता ।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥

(श्रीमद्भागवत १०/३३/२७-२८)

'भगवान् श्रीकृष्ण सारे संसार के स्वामी हैं । स्वांश श्रीबलराम जी के साथ उन्होंने अवतार ग्रहण किया था, उनके अवतार का उद्देश्य भी यही था कि धर्म की स्थापना हो और अधर्म का नाश हो । जो धर्म का वक्ता और कर्ता होता है, वही धर्म का रक्षक होता । तो भगवान् धर्म के रक्षक थे फिर उन्होंने धर्ममर्यादा का उल्लंघन क्यों किया ?'

श्रीशुकदेव जी ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया कि हाँ धर्म मर्यादाओं का उल्लंघन (व्यतिक्रम) हुआ है किन्तु प्रभु की अतिमर्त्य लीलाओं में मन से भी शंका करने पर विनाश हो जाएगा ।

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् ।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥
नैतत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः ।
विनश्यत्याचरन् मौढ्याद्यथारुद्रोऽब्धिजं विषम् ॥

(श्रीमद्भागवत १०/३३/३०,३१)

आखिर धर्ममर्यादाओं का उन्होंने उल्लंघन क्यों किया ? इसका उत्तर आगे शुकदेव जी देते हैं –

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥

(श्रीमद्भागवत १०/३३/३७)

'भगवान् की कृपाशक्ति ये सब लीलायें कराती है, जिसको सुनकर जीव उसमें तत्पर हो जाय ।'

दुर्वासा जी साक्षात् शिवांश हैं और भगवान् के गुरु भी हैं । भगवान् ने स्वयं गर्ग संहिता में गोपियों से कहा है –

भाण्डीरे मे गुरुः साक्षाद् दुर्वासा भगवान्मुनिः ।
आगतोऽद्य प्रियास्तस्य सेवार्थं गतवानहम् ॥

(गर्ग संहिता, माधुर्यखण्ड, १/१२)

किन्तु भक्त अम्बरीष जी का अपराध करने पर भगवान् ने अपने गुरु दुर्वासा जी को उनकी रक्षा करने से स्पष्ट मना कर दिया ।

भगवान् बोले –

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥

(श्रीमद्भागवत ९/४/६३)

'हे विप्रदेव ! मैं कोई स्वतन्त्र ईश्वर नहीं हूँ, मैं भक्तों का दास हूँ ।

नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना ।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा ॥

(श्रीमद्भागवत ९/४/६४)

भक्तों के बिना मैं अपनी सत्ता भी नहीं मानता हूँ, श्रीजी (लक्ष्मी एवं श्रीराधा) की भी सत्ता नहीं मानता हूँ । श्रीजी में राधारानी भी आती हैं । गोलोक में श्रीदामा ने जब शाप दिया था उसका श्रीराधारानी ने पालन किया ।' भगवान् ने आदिपुराण में कहा भी है –

कान्ता प्राणाधिका शश्वन्न हि कोऽपि ततोऽधिकः ।
भक्तान्द्वेष्टि स्वयं सा चेत् तूर्णं त्यजति तां विभुः ॥

'स्त्री प्राणों से अधिक प्रिय होती है उससे ज्यादा प्रिय कोई नहीं होता है किन्तु यदि मेरी प्रिया भी यदि भक्तापराध करेगी तो उसका भी मैं तत्क्षण परित्याग कर दूँगा ।'

अस्तु भगवान् दुर्वासा जी से बोले कि मैं तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता हूँ । तुम शरणागत हुए हो इसलिए केवल उपाय बता सकता हूँ।

उपायं कथयिष्यामि तव विप्र श्रृणुष्व तत् ।

(श्रीमद्भागवत ९/४/६९)

अतएव भगवान् ने भक्तापराधी होने के कारण दुर्वासा जी की स्वयं रक्षा नहीं की । ऐसी स्थिति में भगवल्लीला या भक्तलीला को मर्यादा में बाँधना, ये अपने प्रति व समाज के प्रति अन्याय है ।

श्रीकर्दम जी ने कपिल भगवान् से कहा है –

तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव ।
यानि यानि च रोचन्ते स्वजनानामरूपिणः ॥

(श्रीमद्भागवत ३/२४/३१)

'हे प्रभो ! जो रूप आपके भक्तों को प्रिय लगते हैं, वही रूप आपको भी प्रिय हैं ।'

भगवान् भक्तों के लिए सारी मर्यादाओं को तोड़ देते हैं । वेदों में कहा गया कि भगवान् सत्यसंकल्प हैं किन्तु भक्त की प्रतिज्ञा रखने के लिए इस मर्यादा को भी तोड़ दिया । इसी प्रकार –

मीरा के नचाने पर नाचे ।
माधवदास जी का मल साफ किया ।
गोविन्द स्वामी के साथ शौच करते समय क्रीड़ा की ।
अर्जुन के लिए सारथी बने ।
द्रौपदी के लिए अधोवस्त्र बने ।

आदि अनेकों उदाहरणों से श्रीभक्तमाल जी भरी पड़ी हैं ।

यही भक्त भी करते हैं, भगवान् के लिए सभी लौकिक-वैदिक बन्धनों को तोड़ देते हैं । मीरा जी का यही लक्ष्य था –

'लोक लाज कुल की मरजादा, यामे एक न राखूँगी ।'

मीराबाई या झाली रानी ने जानबूझकर रैदास जी को गुरु बनाया।

झाली रानी भी जब गुरु की खोज में काशी पहुँची और श्रीरैदास जी की कीर्ति सुनकर उनके दर्शन के लिए गयीं । रैदास जी के दर्शन करते ही रानी ने श्रीरैदास जी को हृदय से अपना गुरु मान लिया और उनसे गुरु मन्त्र प्रदान करने के लिए प्रार्थना की ।

प्रथम तो रैदास जी ने टाल-मटोल किया और रानी का अपनी जाति की ओर ध्यान आकृष्ट किया परन्तु झाली रानी ने स्पष्ट कह दिया कि मेरी आपमें जातिबुद्धि नहीं है, आपको तो मैं ईश्वररूप, गुरुरूप में देखती हूँ ।

झाली रानी को अधिकारी जानकार श्रीकबीरदास जी के अनुरोध पर श्रीरैदास जी ने मन्त्र प्रदान किया ।

श्रीरघुराजसिह जी ने लिखा है –

यक झाली नामक की रानी । आई शिष्य होन हुलसानी ॥
नहि रैदास मंत्र तेहि दीन्हों । तब कबीर संबोधन कीन्हों ॥
रानी को रैदास तब, कियो शिष्य दै मंत्र ।

काशी के ब्राह्मणों ने जब यह सुना तो सब चिढ़ गए और द्वेष से उनके हृदय में आग-सी लग गयी –

'संग हुते बिप्र सुनि छिप्र तन आंच लागी'

('भक्तिरसबोधिनी', कवित्त २६६)

यही रामरसिकावली में श्रीरघुराज सिह जी लिखते हैं –

तब तेहि संग पण्डित सकल, कीन्हौं बैर स्वतंत्र ।

और झाली रानी से पण्डित बोले –

चर्मकार को गुरु कियो, दीन्ह्यो धर्म बहाय ।

'तूने चित्तौड़ की रानी होकर, क्षत्राणी होकर एक चमार को गुरु बनाया है, तू धर्मभ्रष्ट हो गयी है ।'

काशी के सम्मानीय पण्डितों की बात सुनकर झाली रानी उनसे दबी नहीं क्योंकि वह बड़ी वीर, दक्ष (चतुर), विदुषी, भक्ता और परम विवेकवती थी । तभी तो वह अकेली गुरु की खोज में चित्तौड़ से निकली थी और एकतनू, कपट मुनि कालनेमि जैसे गुरुओं के चक्कर में नहीं आई, उसने नीच जाति आदि न देखकर सीधे श्रीरैदास का गुरु रूप में वरण किया अतः झाली रानी ने निर्भयता पूर्वक पण्डितों से कहा –

रानी कह्यो न नीच है, साँचौ ईश्वर आय ।

'श्रीरैदास जी नीच वर्ण के नहीं हैं, वह तो सच्चे ईश्वर हैं ।'

यहाँ झाली रानी ने श्रीमद्भागवत के इस सिद्धान्त को कहा है –

त्वदनुपथं कुलायमिदमात्मसुहृत्प्रियव-
च्चरति तथोन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च ।
न बत रमन्त्यहो असदुपासनयाऽऽत्महनो
यदनुशया भ्रमन्त्युरुभये कुशरीरभृतः ॥

(श्रीमद्भागवत १०/८७/२२)

'हे प्रभो ! जब यह शरीर आपकी उपासना के मार्ग पर चलता है तब यह आत्मा, सुहृद् और प्रिय बन जाता है अर्थात् भगवान् बन जाता है क्योंकि जीव के सच्चे सुहृद्, प्रियतम और आत्मा आप ही हैं परन्तु बिडम्बना है कि फिर भी जीव आपकी उपासना में नहीं रमता बल्कि इस असत् शरीर तथा उसके सम्बन्धियों में रम जाता है, आपकी उपासना छोड़कर इनकी उपासना करता है । इसीलिए यह आत्मा का हनन करने वाला बन जाता है और अधोगति में पहुँच जाता है ।'

रानी के इस प्रकार के कठोर उत्तर को सुनकर सब पण्डित वहाँ से चले गए और लोगों की बहुत भीड़ लेकर काशीराज के दरबार में गए वहाँ गुहार लगाई कि रैदास जी को दीक्षा देने का अधिकार नहीं है, उन्होंने यह वेद मर्यादा के विरुद्ध कार्य किया है, आप न्याय करें । तब राजा ने श्रीरैदास जी को दरबार में बुलवाया –

वैसेहि सिंहासन पै आनि कै विराजे प्रभु
पढ़े वेद वानी पै न आये यह आई है ।

('भक्तिरसबोधिनी', कवित्त २६६)

दरबार में भगवान् की मूर्ति को सिंहासन पर पधरा दिया और कहा कि 'भगवान् बुलाने पर जिसके पास चले जायेंगे वही उनके मन्त्र को देने का अधिकारी है ।' पण्डितों ने सस्वर वेदपाठ किया किन्तु भगवान् उनके पास नहीं गए ।

पतितपावन नाम कीजिये प्रगट आजु
गायो पद गोद आइ बैठे भक्ति लई है ॥

('भक्तिरसबोधिनी', कवित्त २६६)

पश्चात् श्रीरैदास जी ने एक पद गाकर भगवान् को बुलाया –

आयौं आयौं हौं देवाधिदेव तव शरण आयौं ।
सकल सुख को मूल जाके नाहि समतूल सो चरणमूल पायौं ॥
कियो विविध जोनिवास जमकी त्रास तुम्हरे भजन बिन भ्रमत फिर्‌यौ ।
मायामोह विषय रसलम्पट यह दुस्तर दुःख तर्‌यौ ॥
तुम्हरे नाम विश्वास छांड़ि आन आस संसारी धर्म मेरो मन न पतीजै ।
रैदास दास की सेवा मानहु देवा पतितपावन नाम आज प्रगट कीजै ॥

पद समाप्त होते ही अत्यन्त प्रेमवश होकर भगवान् श्रीरैदास जी की गोद में आकर विराजमान हो गए । इस चमत्कार से प्रभावित होकर लोगों ने भक्ति की महिमा को स्वीकार किया ।

इसलिए भगवान् और उनके भक्तों को कर्मबन्धनों में बाँधना यह पूर्णतः अज्ञान व अपराध है ।

ब्रजगोपियाँ भी चारों वर्णों की थीं –

श्यामसुन्दर ते दास्यः करवाम तवोदितम् ।
देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद् राज्ञे ब्रुवामहे ॥

(श्रीमद्भागवत १०/२२/१५)

इस श्लोक की टीका में आचार्यों ने गोपियों के चारों वर्णों को प्रदर्शित किया है –

'केचित्त्वत्र वर्णचतुष्टयजास्ता इत्यूचुः । दास्य इत्युक्तवंत्यः शूद्रजाः, करवामेत्यादिवचना वैश्यजाः, देहीत्यादिवाचना विप्रजाः, नो चेदित्यादिवचनाः क्षत्रियजा इति ।'

(श्रीवंशीधरकृतो भावार्थदीपिकाप्रकाशः)

ते दास्यः – शूद्र वर्ण ।
करवाम तवोदितम् – वैश्य वर्ण ।
देहि वासांसि धर्मज्ञ – ब्राह्मण वर्ण ।
नो चेद् राज्ञे ब्रुवामहे – क्षत्रिय वर्ण ।

अस्तु यही वर्णाश्रमादि के बन्धनों से मुक्त लीलायें भक्तमाल में हुई हैं । जिसकी मति वर्णादि से आवृत है उसको कृष्ण नाम लेने तक का अधिकार नहीं है, वह मीरा जैसे पवित्र नाम को कभी न ले क्यों कि मीरा जी का यह प्रण था –

'लोक लाज कुल की मरजादा, यामे एक न राखूँगी ।'

यहाँ तक कि कुछ संकीर्ण लोग श्रीमीराबाई पर आक्षेप करते हैं कि वह अनन्य नहीं थीं किन्तु उन लोगों ने अनन्यता की सही परिभाषा को न समझकर संकीर्णता को ही अनन्यता समझ लिया है । मीराबाई की अनन्यता में संकीर्णता नहीं थी ।

'एक में भाव (निष्ठा) होना किन्तु अन्यत्र अभाव न होना, यह है अनन्यता; अन्यत्र अभाव आते ही वह संकीर्णता बन जाती है ।'

मीरा जी के पदों में 'राम' नाम आता है, यह दिखाता है कि श्रीरैदास जी इनके गुरु थे और उनसे मीरा जी ने विशालता की शिक्षा ली; वह सच्ची शिष्या थीं, आज के संकीर्ण विचारकों की तरह नहीं थीं। उनकी अनन्यता में शंका करना पूर्ण अपराध है ।

श्रीमान मंदिर सेवा संस्थान से संचालित 'श्रीराधारानी वार्षिक ब्रजयात्रा' जिसमें १५००० से अधिक भक्तगण ४० दिन तक अखण्ड भगवन्नाम-संकीर्तन के साथ लीला-स्थलियों के दर्शन व माहात्म्य श्रवण करते हुए पदयात्रा करते हैं । यात्रा पूर्णतः निःशुल्क है । आगामी यात्रा ३ अक्टूबर २०१७ से प्रारम्भ होगी ।